ओ३म्

सत्यापन क्रमांक :
RAJHIN/2015/60530

महर्षि दयानन्द स्मृति प्रकाश

हिन्दी मासिक

वर्ष : १० अंक : ११ १ नवम्बर २०२४ जोधपुर (राज.) पृ.:३६ मूल्य १५० र वार्षिक

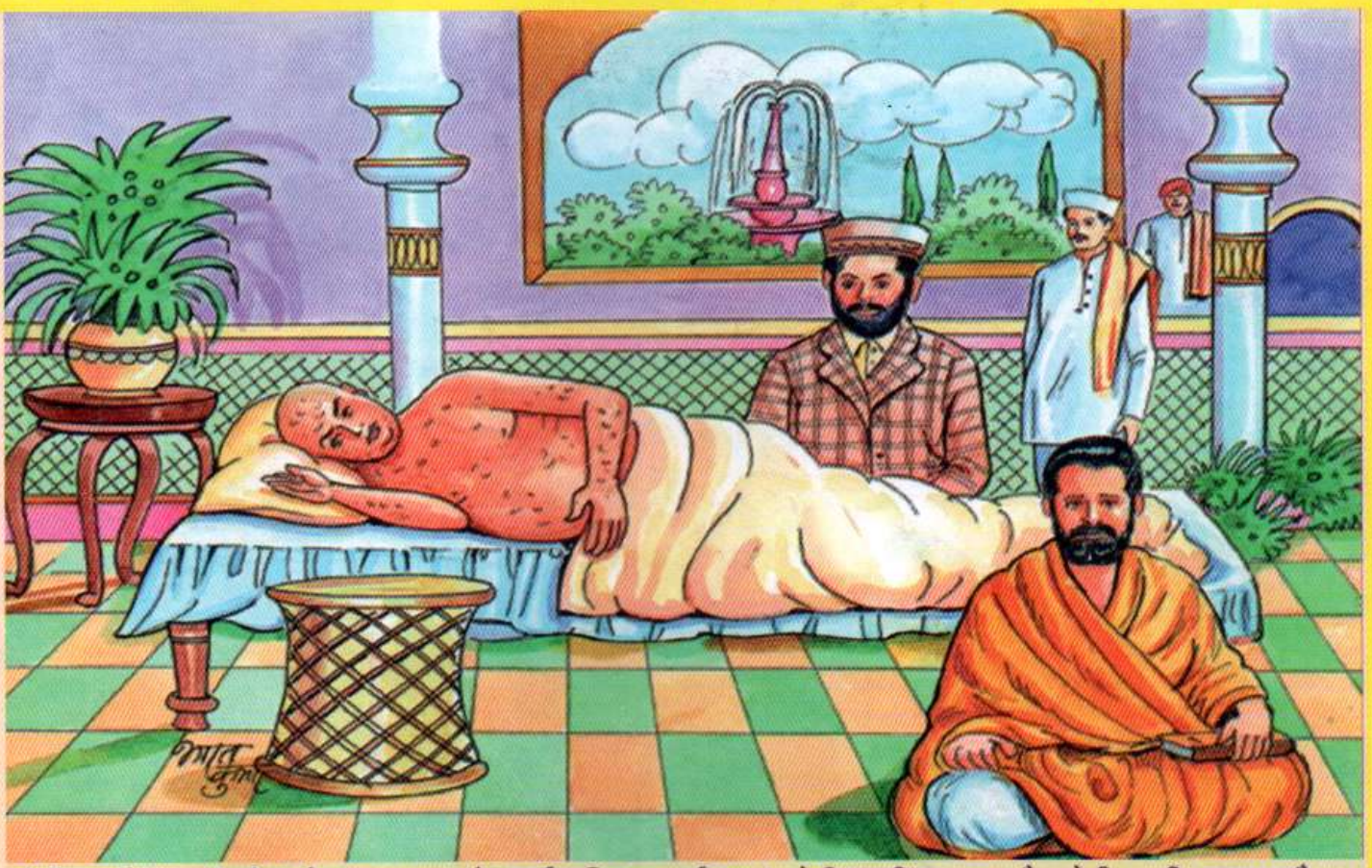

तेरी यही इच्छा है—"हे दयामय! हे सर्वशक्तिमन् ईश्वर! तेरी यही इच्छा है, तेरी यही इच्छा है, तेरी इच्छा पूर्ण हो, आहा!!! तैने अच्छी लीला की।" महाराज उस समय सीधे लेट रहे थे, ये शब्द कहकर उन्होंने स्वयं करवट ली और एक प्रकार से श्वास को रोककर एकदम बाहर निकाल दिया । महाराज की मानवी लीला समाप्त हुई और उनका आत्मा नश्वर देह को छोड़कर जगज्जननी की प्रेममयी गोद में जा विराजा। महाराज के शरीर छूटने के समय छह बजे थे।

मृत्युदृश्य ने नास्तिक को आस्तिक बना दिया—महाराज के मृत्यु–दृश्य को पण्डित गुरुदत्त चुपचाप खड़े हुए देख रहे थे। वे यद्यपि आर्यसमाज के सभासद् थे। परन्तु ईश्वर के अस्तित्व में उन्हें सन्देह था। उन्होंने देखा कि एक योगी और ईश्वर का सच्चा विश्वासी मृत्यु पर कैसे विजय पा सकता है ! इस दृश्य को देखकर उनके सारे सन्देह दूर हो गये, जो उस समय तक किसी युक्ति से दूर न हुए थे और वे सचे आस्तिक बन गये।

गुरु तेगबहादुर बलिदान दिवस मिति मार्गशीर्ष कृ० ८ संवत् १७३२ विक्रमी 11.11.1675

जिस देश और धर्म के पीछे इन बलिदानियों ने अपने प्राण त्याग दिये, वे हमें भी प्रिय होने ही चाहिये! अन्यथा हमें विचार करना चाहिए कि हम मानव भी है या नही!

महारानी लक्ष्मीबाई जयन्ती कार्तिक शुक्ल १३ संवत् १८८५ विक्रमी 19.11.1828 ईस्वी

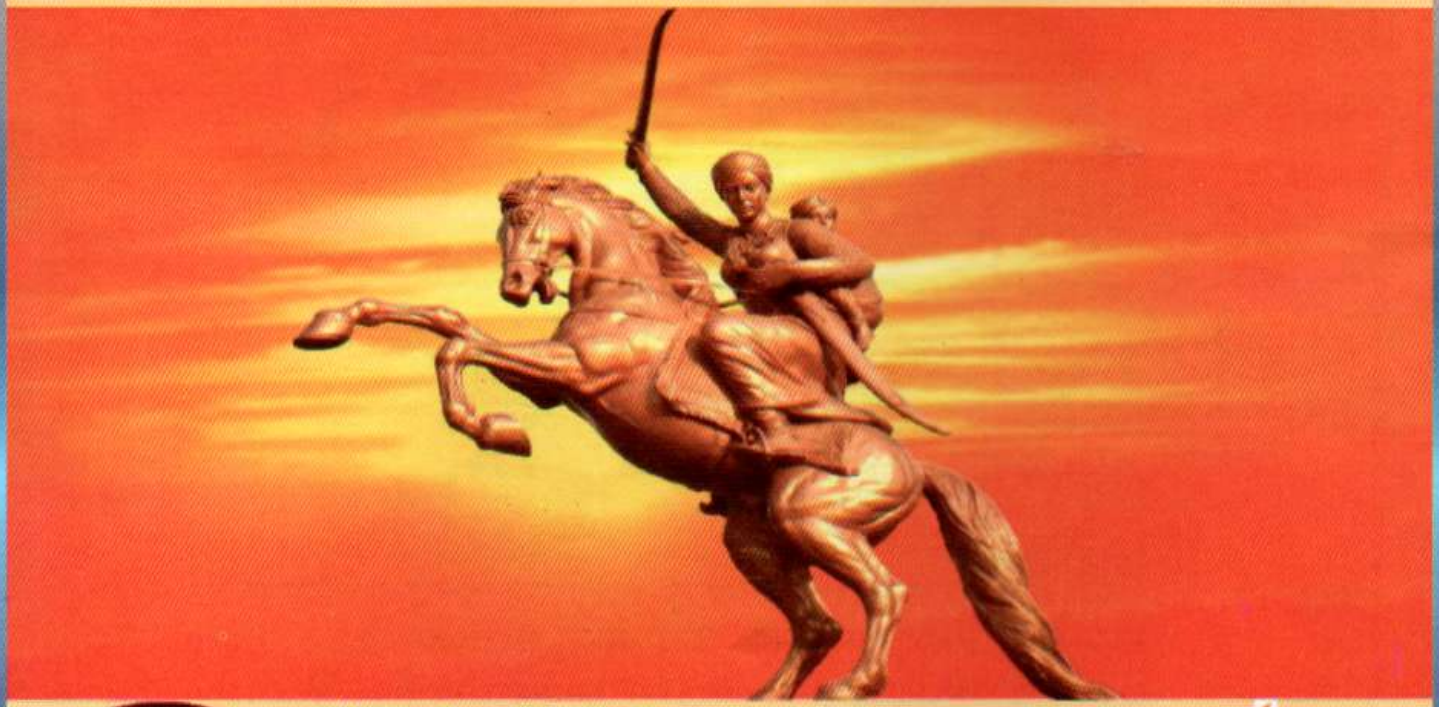

ओ३म

देश धर्म पर जिनने वारे प्राण, त्याग निज ममता मोह।
उनको मात्र याद करना है, थोथी रीति, उसे दे छोड़।
तनमनधन, निजजीवन, परिजन देशधर्महित दे तू छोड़।
परंपरा कायम रख उनकी, तभी सत्य-जय उनकी होय।।

कृण्वन्तो विश्वमार्यम् । -ऋग्वेद ९।६३।५

सबको श्रेष्ठ बनाओ

महर्षि दयानन्द स्मृति प्रकाश का मुख्य प्रयोजन

महर्षि दयानन्द सरस्वती के व्यक्तित्व, कृतित्व, व उनके द्वारा लिखित समस्त साहित्य तथा उनके सार्वभौमिक अद्वितीय कार्यों व सिद्धांतों का प्रचार-प्रसार, स्थापना व व्यवहार में साकार करने के लिये कार्य करना ।

महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मृति भवन न्यास, जोधपुर का मुखपत्र

महर्षि दयानन्द स्मृति प्रकाश

वर्ष : १० अंक : ११

दयानन्दाब्द : -२००

विक्रमसंवत् : माह- कार्तिक २०८१

कलि संवत् ५१२४

सृष्टि संवत् :१,९६,०८,५३,१२४

सम्पादक मण्डल :

प्रा. राजेन्द्र जिज्ञासु, अबोहर

डॉ. सुरेन्द्रकुमार, हरिद्वार

डॉ. वेदपालजी, मेरठ

पं. रामनारायण शास्त्री, सिरोही

आचार्या सूर्यादेवी चतुर्वेदा

कार्यवाहक सम्पादक :

कमल किशोर आर्य

Email: sampadakmdsprakash@gmail.com

9460649055

प्रकाशक : (0291-2516655

महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मृति भवन न्यास, जसवन्त कॉलेज के पास, जोधपुर ३४२००१

लेख में प्रकट किए विचारों के लिए सम्पादक उत्तरदायी नहीं है । किसी भी विवाद की परिस्थिति में न्याय क्षेत्र जोधपुर ही होगा ।

Web.-www.dayanadsmritinyas.org.

वार्षिक शुल्क :१५० रुपये

आजीवन शुल्क : ११०० रुपये

(१५वर्ष)

अनुक्रमणिका

क्या	कहाँ
१४१ वाँ ऋषि स्मृति सम्मेलन की झलकियाँ	
ऋषि स्मृति सम्मेलन विशेषांक भाग-२	
१. द्वितीय दिवसः प्रातःकालीन सत्र	४
२. पूर्वाहन सत्रः भजन-प्रवचन	७
३. सायं सत्रः अथर्ववेद खण्ड पारायण यज्ञ	१६
४. रात्रि यज्ञः भजन प्रवचन	१७
५. तृतीय दिवस प्रातः कालीन सत्र	२५
६. रात्रि सत्र - भजन-प्रवचन	३१

महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मृति भवन न्यास
बैंक ऑफ बडौदा खाता संख्या-01360100028646
IFSC BARB0JODHPU
यह पांचवा अक्षर जीरो है

१४१ वाँ ऋषि स्मृति सम्मेलन

मिति आश्विन् कृ० ११ से १४ संवत् २०८१ विक्रमी

शनिवार २८.०६.२०२४ से मंगलवार ०१.१०.२०२४

द्वितीय दिवसः प्रातःकालीन सत्र

मिति आश्विन कृष्णपक्ष १२ संवत् २०८१ विक्रमी रविवार २६.०६.२०२३

अथर्ववेद खण्ड पारायण यज्ञ

स्थानः महर्षि दयानंद सरस्वती स्मृति भवन परिसर में ब्रह्मर्षि विरजानन्द उद्यान

महर्षि दयानंद सरस्वती स्मृति भवन न्यास, जोधपुर द्वारा आयोजित चार दिवसीय १४१ वें ऋषि स्मृति सम्मेलन के दूसरे दिन मिति आश्विन कृष्णपक्ष १२ संवत् २०८१ विक्रमी रविवार २६.०६.२०२४ खीस्ताब्द का आरंभ महर्षि दयानंद सरस्वती स्मृति भवन में ही विराजमान न्यास के आजीवन न्यासी आचार्यश्री वरुणदेवजी के ब्रह्मत्त्व में महर्षि दयानंद सरस्वती स्मृति भवन परिसर में सामूहिक 'अथर्ववेद खंड पारायण यज्ञ' के लिए ५२ यज्ञकुण्डों से सज्जित ब्रह्मर्षि विरजानन्द उद्यान में ब्रह्मयज्ञ से हुआ।

आज के 'अथर्ववेद खंड पारायण यज्ञ' में अथर्ववेद के २७वें प्रपाठक के पंचम सूक्त के मंत्रों से आहुतियाँ दिलवाने का आरंभ आचार्य जी ने किया।

प्रथम विराम पर आचार्यजी ने २६वें प्रपाठक के प्रथम सूक्त (भूमि सूक्त) की ही चर्चा गत सत्र से आगे बढ़ाते हुए कहा कि यदि भूमि पर हमारे अस्तित्व का निश्चय हो जावे परस्पर का व्यवहार भी आ जावे तो अगली बात बचती है कि हम किस प्रकार उन्नति को प्राप्त होवे। अथर्ववेद के काण्ड १२ सूक्त १ के मन्त्र सं. ६२ **उपस्थास्ते अनमीवा अयक्ष्मा अस्मभ्यं सन्तु पृथिवि प्रसूताः। दीर्घं न आयुः प्रतिबुध्यमाना वयं तुभ्यं बलिहृतः स्याम।।** की व्याख्या करते हुए आचार्यजी ने कहा कि वेद मंत्रों में एक पद ऐसा होता है जो मंत्र के अर्थ की कुंजी होता है। **उपस्थ** कहते हैं गोद को। बच्चों को सबसे अच्छी गोद माँ की लगती है। यह भूमि भी हमारी माता है। इसकी गोद में हम बैठे हैं और कहते हैं कि तेरी जिस गोद में हम बैठे हैं, वह कैसी हो कैसी हो! कि तेरी गोद हमारे पास रोग के कीटाणु नहीं आवे, हम इन्हें नष्ट कर सकें इसके लिए पर्याप्त ससमर्थ्य देवें। इसके साथ ही **अनमीवा** शब्द की व्याख्या भी आचार्यजी ने की। तेरी गोद में हमें वह औषधि और वनस्पतियाँ प्राप्त हो जावे जिनसे रोग नष्ट हो जावे। **अयक्ष्मा** की व्याख्या करते हुए आचार्यजी ने कहा कि यक्ष्मा सामान्यतः टीबी (ट्यूबरक्लोसिस) रोग को कहते हैं। हमें टीबी नहीं होवे। जब व्यक्ति क्षीण होने लगता है तो कहते हैं कि इसको टीबी हो गई। फेफड़ों में जख्म जैसे हो जाते हैं। हम राजरोग **यक्ष्मा** या की टीबी से कभी पीड़ित नहीं हों।

जब भी कोई कष्ट आवे तो सबसे पहले हम पृथ्वीमाता का स्मरण कर लेवें। हे पृथ्वी माता! हम तुझसे ही उत्पन्न हुए हैं। इसलिए तेरी स्तुति और प्रार्थना अर्थात तेरा सदुपयोग जानना चाहते हैं। तुमसे ज्ञान की अपेक्षा करते हैं, जिससे हमारी आयु दीर्घ हो जावे। टीवी पर महाभारत समर से पूर्व युधिष्ठिर, अर्जुन आदि कुंती के पास आशीर्वाद लेने गए। कुंती ने

आयुष्मान होने का आशीर्वाद दिया। श्रीकृष्ण ने युद्ध के समय विजयी होने के आशीर्वाद देने के लिए कहा। सत्य यह है कि आयुष्मान होने का आशीर्वाद छोटा नहीं है। आयु नाम आपकी कमाई का है। आप क्या कमा कर लेकर आए हैं और आपकी यह कमाई बहुत अधिक हो। शास्त्र भी कहता है **'अल्पे सुखम नास्ति'** थोड़े में सुख नहीं है। दीर्घायु की कामना के अंदर आपका स्वास्थ्य, आपकी विजय, आपकी उन्नति, सब बातें सम्मिलित है। जब आप किसी से 'दीर्घायु हो' कहते हैं तो इन सब चीजों की वृद्धि का आशीर्वाद देते हैं। ऐसी दीर्घायु की कामना हमें प्राप्त हो, ऐसी प्रार्थना पृथ्वी माता से हम इस मंत्र में करते हैं। ऐसा करने के लिए एक शर्त है कि हमारे पास प्रतिबोध हो! प्रतिबोध का अर्थ विभिन्न भाष्यकारो ने भिन्न–भिन्न किया है। एक भाष्यकार कहते हैं बोध का अर्थ है ऐंद्रीय अर्थात इंद्रियजन्य ज्ञान– यही बोध होता है। एक अन्य भाष्यकार के अनुसार प्रतिबोध का अर्थ है आध्यात्मिक ज्ञान। चीनी में मिठास गन्ने का था जो भूमि से मिला। उपजाऊ भूमि में उपजाने का सामर्थ्य परमात्मा ने प्रदान किया। यह मिठास हमारे पूरे प्रयत्न के बाद ही हमें प्राप्त हुआ। यह प्रतिबोध है। जब मैं प्रतिबोध से युक्त हो जाता हूँ तब मेरी आयु दीर्घ हो सकती है और यदि प्रतिबोध से युक्त नहीं हुआ, केवल सांसारिक वस्तुओं के विषयों में रह गया, तो क्षीण होने वाली सांसारिक वस्तुओं का ज्ञान भी समय आने पर नष्ट ही होगा। किंतु आध्यात्मिक स्तर पर पहुँचकर परमात्मा के ज्ञान को प्राप्त किया तो वह हमारे स्तर को स्थिर करता है जो अगले जन्म में भी हमारे साथ चलता है ताकि आगे प्रतिबोध प्राप्त करने में उतना ही कम परिश्रम करना पड़ेगा। दूसरे भाष्यकार कहते हैं बौध शब्द का अर्थ है विवेक! अर्थात् अलग–अलग करने का सामर्थ्य। जब तक हम विवेचन या अलग–अलग वस्तुओं को खोलकर उनका ज्ञान नहीं कर लेते तब तक हमारा व्यवहार युक्त नहीं होता। जिस व्यक्ति को विभेदन का विवेक करना आता है वह संसार में उन्नति को प्राप्त करता है। इस मंत्र में भी विवेक की प्रार्थना करते हैं अर्थात् हम कर्तव्यों के विषय में सावधान रहे। भाष्यकार कहते हैं–यह जो मैं श्रेष्ठ कार्य करता हूँ, ज्ञान से युक्त होकर कर्तव्य का स्मरण करता हूँ इसका मुझे बाद में भी स्मरण आया करें तो बौध के पश्चात होने वाले सूक्ष्म बोध को प्रतिबोध माना है। अपने कर्तव्य का जो ध्यान रखा उसे स्मरण करने से आप में उत्साह का संचार होता है, आनंद होता है और आपको स्वयं लगता है कि आप अच्छे कार्य करने वाले हैं।

मंत्र में आगे कहा है कि हम सब तेरे लिए बलि को लाने वाले हों। बलि का तात्पर्य किसी जंतु को काटना नहीं, बल्कि इस शब्द का अर्थ है–कर, जिसे आंग्लभाषा में टैक्स कहते हैं। जो व्यक्ति ईमानदारी से कर प्रदान करता है तो वह शासन और व्यवस्था के द्वारा सब के सुख का हेतु है। मैंने जन्म से लेकर आज पर्यंत वायुमंडल से शुद्ध वायु खींची है, बहुत सारे शुद्ध जल का प्रयोग किया, भूमि से वनस्पति आदि का ग्रहण करता हूँ। इसके बदले में अब तक कुछ नहीं दिया। यज्ञ उसके बदले में दिया जाने वाला कर ही है, जिससे वायु और वृष्टिजल की शुद्धि होती है।

आचार्यजी ने एक चोर का उदाहरण दिया कि चोर बड़ी मेहनत करके सेंध लगा करके धन चोरी किया और व्यवस्था के कारण पकड़े जाने पर यदि वह न्यायाधीश के समक्ष जा करके कह कि यह मेरे परिश्रम की कमाई है तो व्यवस्था नहीं मानेगी। किंतु व्यवस्था उससे वह धन तो

छीन ही लेगी उलटे दंड और देगी। क्योंकि उसने अन्य के श्रम से अर्जित धन का हरण किया है। कर नहीं देने पर हमें धन छुपाना पड़ता है और छापा पड़ने पर पकड़े जाते हैं और दंडित होते हैं। जो व्यक्ति यज्ञ में आहुति देता है, वह वातावरण का परमेश्वर को कर देता है। इससे अपनी कमाई को– वातावरण से लिए जाने वाले पदार्थों को अपना बनाते हैं। अभी आप न्यास के द्रव्य का उपयोग कर रहे हैं किंतु जब आप अपनी जेब से धन निकाल करके न्यास को सहयोग करेंगे तो आप अपने स्वयं के धन से कर अदा कर रहे होंगे। इस मंत्र में भूमि से आगे कहा कि हम केवल भूमि का शोषण ही करने वाले ना रहें, हम अपनी आने वाली पीढ़ी के लिए यज्ञों का आयोजन करें, जिनमें हम पूर्ण मनोयोग के साथ आहुति डालें। हम दिशा और प्रतिबोध दोनों से युक्त हों, विवेक और चेतनता से युक्त हों, हमारे पास ज्ञान हो और श्रेष्ठ ज्ञान का हम बार–बार स्मरण करें।

अथर्ववेद के मंत्रों से आहुति का क्रम आगे बढ़ा और दूसरे विराम पर आचार्यश्री ने कहा कि संसार का सबसे बड़ा रोग मृत्यु है जिससे सब दूर रहना चाहते हैं। हम मृत्यु की इच्छा नहीं करते पर मर जाते हैं। हमें दुख इच्छा से विपरीत कार्य होने पर होता है। यदि मृत्यु हमारी इच्छा से आने लगे तो क्या हमें दुख होगा? आवश्यक कार्य पर जाने से ठीक पहले कोई अतिथि आ जाए तो हम उसके जाने की कामना करते हैं। वहीं यदि अतिथि सूचना देकर के आएँ तो दुख नहीं होता। मृत्यु भी यदि हमें तिथि बढ़ाकर हमारी जानकारी में आ जाएँ तो शायद हमें दुख नहीं होगा। पश्चात् अथर्ववेद के काण्ड १२ सूक्त २ के मन्त्र सं. ७ **यो अग्निः क्रव्यात्प्रविवेश नो गृहमिमं पश्यन्नितरं जातवेदसम्। तं हरामि पितृयज्ञाय दूरं स घर्ममिन्धां परमे सधस्थे।** की व्याख्या करते हुए आचार्यजी ने कहा **कव्य** कहते हैं मांस आदि खाने वाले पक्षियों को, कुत्ते, भेड़िया भेद आदि जीवों को। हमारे घर में **क्रव्याद** अग्नि घुस गया जो हमारे परिवार के सदस्यों को हमसे पहले खा जाता (मृत्यु के मुख में ढकेल देता) है। वेद में **क्रव्याद** अग्नि आगे **श्मशान अग्नि** को भी कहा है। यह अग्नि जब घर में घुस जाए तो बड़ों के रहते छोटा मरने लगता है। अंतिम समय में हम इस मांस के पिंड शरीर को अग्नि में ही ले जाकर डाल देते हैं। किंतु जब वह घर में घुस गया तो क्या करें? तो कहते हैं एक दूसरा अग्नि भी है जिसे जातवेदा कहते हैं। जिन घरों में जातवेदा अग्नि रहता है उन घरों में यह **क्रव्याद** अग्नि नहीं घुस सकता। इसे प्रवेश का अवसर ही नहीं मिलता। हम यज्ञ में पंचघृताहुति से पाँच बार जातवेदा अग्नि का आह्वान करते हैं। जो लोग इस जातवेदा अग्नि को अपने घर में रखते हैं उनमें **क्रव्याद** अग्नि नहीं आने से असमय मृत्यु को परिजन प्राप्त नहीं होते।

आचार्यजी ने बताया कि पंडित युधिष्ठिरजी मीमांसक कहते थे कि हमारे पास पाँच ज्ञानेंद्रिय है। इनसे ज्ञान प्राप्त करने वाले मस्तिष्क का नाम जातवेदा है। वह ज्ञान हमें भली प्रकार प्राप्त हो और उनके द्वारा हम उत्तम उत्तम कर्म करने में समर्थ हो इसलिए पाँच बार जातवेदा अग्नि का आह्वान करते हैं। जात अर्थात उत्पन्न होने वाला। वेद शब्द विद् धातु से बना है जिसके पाँच अर्थ किए हैं। एक अर्थ है विज्ञान् अर्थात् हमारे पास ज्ञान उत्पन्न हो, ऐसा जातवेदा अग्नि हो। अन्य अर्थ है विदालृ लाभे अर्थात् ज्ञान से लाभ प्राप्त हो– ऐसा जातवेदा अग्नि हो। विद् सत्तायाम् उस ज्ञान और लाभ के द्वारा हमारा शासन स्थिर रहे ऐसा करने वाला

जातवेदा अग्नि हो। विद् विचारणे, हम सदा विचार से उत्तम वेद के ज्ञान से संपन्न रहे, इसमें समर्थ करने वाला जातवेदस अग्नि हो। विद् चेतना आख्यान निवासेषु अर्तात् हमारे पास चेतनता बनी रहे, हम ज्ञान को अभिव्यक्त करने में समर्थ हो सकें और परमेश्वर के भीतर हमारा वास हो, हमारे ज्ञान में वह बना रहे, वही हमारा वास्तविक निवास बना रहे,– वह जातवेदा परमात्मा हमारे यहाँ रहे। यदि कभी **क्रव्याद** अग्नि घर में प्रवेश कर भी जाए तो इसे बहुत दूर फेंक दें। कहाँ और कैसे फेकेंगे? मैं प्रज्वलित कर देता हूँ घाम को। धर्म अर्थात ताप। अर्थात् जातवेदा अग्नि को उत्पन्न करता हूँ, उसे जातवेदा अग्नि को देखते ही यह **क्रव्याद** अग्नि मेरे घर से बाहर दूर भाग खड़ा होता है।

भाष्यकारोंघर्म परमेश्वर को भी कहते हैं क्योंकि परमेश्वर भी एक अग्नि है जो आपके भीतर उपस्थित अज्ञान के अंधकार को हटा देती है, दुखों से बचा लेती है और प्रेरित भी करती रहती है। जैसे ही मैं परमेश्वर संबंधित ज्ञान को अपनी आत्मा में प्रज्वलित कर लेता हूँ वैसे ही यह **क्रव्याद** अग्नि मेरे घर से दूर भाग जाता है।

घर्म का एक और अर्थ है चूल्हों की अग्नि। मैं अपने घर में चूल्हों को प्रदीप अर्थात! जलाकर रखता हूँ जिससे यह **क्रव्याद** अग्नि उसे चूल्हे में प्रवेश न कर जाए। अर्थात् **क्रव्याद** अग्नि को चूल्हे की अग्नि में भस्म कर देता हूँ और उसे अपना नौकर बना करके अपने लिए अन्न पकाने का कार्य लूंगा, उसे नाश करने का कार्य नहीं करने दूंगा।

जो पापों का वहन करने वाला है वह हमारे घर में नहीं रहने पावे। निरुक्तकार महर्षि यास्क ने निरुक्त में जातवेदस का व्याख्यान करते हुए कहा है जो उत्पन्न हुए सब पदार्थों को, वस्तुओं को जानता है और उत्पन्न हुए भी उसी को जानते हैं– वह जातवेदा होता है। सन्यासी का तो वस्त्र ही अग्नि के स्वरूप वाला बना दिया अर्थात् सन्यासी के लिए जातवेदा बनने के अतिरिक्त अन्य कोई विकल्प नहीं है। ऐसे लोग जब हमारे समाज में उपस्थित होते हैं तो हमारे समाज से भी **क्रव्याद** अग्नि भाग खड़ा होता है।

पूर्णाहुति के पश्चात यजमानों को आशीर्वाद प्रदान किया गया।

मिति आश्विन कृष्णपक्ष १२ संवत् २०८१ विक्रमी रविवार २६.०६.२०२३

पूर्वाह्न सत्रः भजन–प्रवचन

स्थानः पाण्डाल

भोजनोपरांत पांडाल में भजन प्रवचन उपदेश का कार्यक्रम आरंभ हुआ। आर्य जगत के सुप्रसिद्ध भजनोपदेशक पंडित राजेशजी अमर प्रेमी ने के ओ३म् के उच्चारण के बाद सुमधुर स्वरों में गायत्री मंत्र का अर्थ सहित गायन किया। '**पितु मातु सहायक स्वामी सखा, तुम ही इक नाथ हमारे हो....**' से श्रोताओं को ईश–भक्ति से भर दिया। पश्चात् '**अक्षर ओम अनादि अपार**' गाकर के ईश्वर की भक्ति में डुबो दिया। तत्पश्चात '**धन्य है तुमको ऐ ऋषि तूने हमें जगा दिया**' और '**बीहड़ वन में विचर रहा था सच्चे शिव का मतवाला, छोड़**

दिया था टंकारा...'गवाते हुए सबको ऋषिभक्तिमय कर दिया।

स्वामी चेतनानंद जी महाराज ने सबसे गायत्री मंत्र का उच्चारण कराने के पश्चात् श्रोताओं से पुनः मिलाने के लिए परमात्मा का धन्यवाद किया और उन ऋषियों का भी धन्यवाद किया जिनकी वाणी को श्रोताओं को सुनाने का अवसर मिला है। इसके पश्चात २९ सितंबर के दिन को विशेष करके याद करते हुए स्वामी जी महाराज ने स्मरण कराया कि आज ही के दिन १८८३ ईस्वी में महर्षि दयानंद को इसी स्थल पर इसी भवन में उनके कक्ष में विष दिया गया था जिसके ठीक एक माह बाद उनका निधन अजमेर में हो गया था। महर्षि दयानंद ने जोधपुर को अपना सबसे लंबा और अंतिम कर्मक्षेत्र बनाकर उपदेश दिया था। आर्यसमाज आप और हम सबके लिए नई चेतना के लिए, दिव्यता के लिए प्रयासरत है। आज का दिवस उन सब बातों को स्मरण करने के लिए है जो हम भूले हैं।

ऋषि के अधूरे कार्यों का पूरा करने की जिम्मेवारी लेते हुए अनेक लोगों ने ऋषि की बात को माना और इस पर कार्य करते हुए उन्होनें भी अपने प्राणों का बलिदान दिया। महर्षि के उसे अधूरे कार्य को पूरा करने के लिए हम कितने त संकल्प है–इस पर विचार करें। महर्षि ने तो अपना कार्य कर दिया, किंतु ऐसे राष्ट्रपुरुष जिसने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में कार्य किया, समय उनके पास थोड़ा था, काम अधिक था, साधन भी अल्प थे और देश में अनेक प्रकार की विपत्तियाँ थीं। इसके बाद भी अपने कार्य से महर्षि ने जो संदेश छोड़े, उन्हें थामते हुए हम और आप सभीजन उनके अधूरे कार्य को पूरा करें। आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान उन कार्यों को करने के लिए कुछ सजग अवश्य है किंतु उन कार्यों को पूरा करने की जिम्मेदारी केवल प्रतिनिधि सभा के सदस्यों की ही नहीं है। किंतु जो भी अपने को ऋषि का अनुयायी कहता है या आर्यसमाज का छोटा सा सदस्य बनकर भी कार्य करने की जिसकी उत्कंठा है उनके लिए भी महर्षि के अधूरे कार्यों को पूरा करने के लिए अपना बचा हुआ समय लगने का संदेश है।

स्वामीजी महाराज ने कहा कि पांडाल में उपस्थिति लगभग सत्तर प्रतिशत लोगों ने जीवन को उसे तरह से जी लिया है जिस तरह से जीने की उनकी इच्छा थी। अब बचे हुए समय में महर्षि के अधूरे कार्यों को पूरा कर जाएँ ताकि उनका जीवन सार्थ हो और महर्षि का कार्य भी हो। ५२ कुंडीय यज्ञ की भूरि भूरि प्रशंसा करते हुए स्वामीजी ने कहा कि ऐसे बड़े यज्ञ राजाओं द्वारा किये जाते था ताकि अधिकतम लोगों को लाभ मिले।

ऐसा ही वृहद्यज्ञ महाराज जनक ने किया और उन्होंने सब लोगों को अपने यज्ञ में आहुति देने के लिए बुलाया किंतु उद्दालक नामक एक ऋषि को निमंत्रित नहीं कर पाए। जब आमंत्रित सन्यासी लोग महर्षि उद्दालक के आश्रम के पास से निकलते थे तो उन ऋषियों को जाते हुए देखकर महर्षि उद्दालक ने उनका सत्कार किया और उनके गंतव्य के बारे में पूछा। एक एक वृद्ध ऋषि ने प्रतिप्रश्न किया कि क्या आपको विदित नहीं है कि महाराज जनक के यहाँ बहुत बड़ा यज्ञ किया जा रहा है। महर्षि उद्दालक ने अनभिज्ञता बताई। किन्तु बिना निमंत्रण ही ऋषियों की उन टोली के साथ महर्षि उद्दालक भी चल पड़े। महाराज जनक ने जब ऋषियों का स्वागत करते हुए मध्य में महर्षि उद्दालक तो देखा तो उन्हें बहुत संकोच

हुआ। पश्चाताप भी हुआ कि बिना निमंत्रण के उद्दालक ऋषि आए हैं। कोई अनहोनी ना हो अतः महर्षि उद्दालक के चरणों में प्रणाम कर महाराज जनक ने क्षमा मांगी। महर्षि उद्दालक ने बड़ी सहजता से उन्हें आश्वस्त किया।

हमें इस घटना से प्रेरणा लेनी चाहिए कि राष्ट्रहित और धर्महित के कार्य में हमें किसी निमंत्रण का प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिए, अभिमान या एषणा नहीं रखनी चाहिए। कहीं भी आर्यसमाज का कार्य हो रहा है, गुरुकुल का कार्य चल रहा है, गौ सेवा हो रही है, देश का कार्य हो रहा है तो उसमें बिना निमंत्रण के भी आगे से आगे बढ़कर भाग लेना चाहिए। श्रोताओं को तत्संकल्प होकर ऐसे कार्यों में जाने के लिए स्वामी जी महाराज ने प्रेरित किया। उनसे बड़प्पन दिखाने को कहा क्योंकि यह राष्ट्र हमारा है। यहाँ की संस्कृति हमारी है। इस राष्ट्र को, इसकी संस्कृति को, इसकी संतान को बचाना है तो जो साठ पैंसठ वर्ष की आयु को प्राप्त कर चुके सक्रिय लोग हैं, वे अपने शेष जीवन को महर्षि के अधूरे सपनों को पूरा करने में लगा दें। वरना, इस राष्ट्र में आने वाले समय में घोर अपराध होंगे जिसके लिए हम जिम्मेवार होंगे और हम उन संकटों की कल्पना भी नहीं कर सकते। जिन लोगों ने महर्षि दयानंद को नहीं बख्शा, वे क्या क्या स्वार्थ साधक काण्ड और पाखण्ड नहीं करेंगे!

स्वामी जी महाराज ने कहा कि आज भी आवश्यकता है कि जिनको हम अपना समझते हैं, उन आस्तीन के सांपों से आर्यसमाज और वैदिक संस्कृति की रक्षा करने के लिए सावधान होकर चलना होगा। बड़े–बड़े शंकराचार्य हमारी कमजोरी से कह देते हैं कि महर्षि दयानंद ने बहुत बड़ी भूल की। ऐसे निर्योग्य लोग महर्षि पर लांछन लगाते हैं। आर्यों! उठो! दूसरे स्थान पर अपनी शक्ति लगाने की बजाय ऐसे लोगों के ऊपर अपनी संगठन शक्ति को लगाइए। तब हमारी संस्कृति की रक्षा होगी और ऋषि का मंतव्य पूरा होगा। जो लोग राम को केवल ईश्वर बनाकर हमारे सामने प्रस्तुत करते हैं, जो कहते हैं कि वेद के हर मंत्र में हम रामायण निकाल कर दिखा सकते हैं और आर्यसमाज के विद्वान चुप बैठे हैं और ऐसे लोगों का विरोध नहीं कर रहे हैं। हमें अपनी संस्कृति को बचाना है तो ऐसे दुष्टों का सामना करना होगा, मैदान में उतरना होगा। अन्यथा आंधी घोर दुखों के आएगी, फिर तुम देखते रहना। भारत में पाखंड के अतिरिक्त कुछ बचेगा नहीं। इन लोगों ने आज भारत को पाखंड की ओर मोड़ दिया है। वैज्ञानिक साधनों से रिसर्च करके जिन्हें भौतिक साधनों की उन्नति में लगाना था उन्हें, नौजवानों को कावड़ जैसी व्यर्थ की यात्राओं में लगाकर बर्बाद कर रहे हैं। सिर्फ वोट देने के लिए उन्हें जागते हैं, अन्यथा भांग और चिलम के नशे में नौजवानों को डुबो रहे हैं और ऐसे लोग राम और कृष्णा को ईश्वर मानते हैं। स्वामीजी महाराज ने कहा कि वैदिक धर्म प्रचार रथ के साथ यात्रा करते हुए उन्होंने लगभग चार लाख विद्यार्थियों को संबोधित किया। किन्तु कभी भी प्रचार यात्रा में किसी आर्यसमाज में नहीं गए। बाहर के लोगों में ही वैदिक धर्म का प्रचार किया। इधर रामदेवरा की यात्रा, इधर कावड़ियों की, इधर पुराणों को सर पर लेकर कलश यात्राएं धर्म के नाम पर हो रही हैं। ये हमें ललकार रही हैं।

आज पाखंडी घर में वृद्ध माता–पिता को पानी नहीं पिलाते और लंबी यात्राएं करके

उस पिंडी पर गंगाजल का अभिषेक करने का ढोंग रखते हैं, जिस पिंडी पर चूहे चढ़े देख इसकी निरर्थकता और पाखण्ड को जान महर्षि दयानंद जाग कर सच्चे शिव की खोज में निकल पड़े। इनका विवेक इतना कुठित है कि ये तो पौराणिकता से भी नहीं सोचते कि शिव की तो जटा में गंगा है, हमें लाने की आवश्यकता क्या है? महर्षि दयानंद की तरह सब की आंखें खोलनी है। महर्षि प्रदत्त प्रकाश से हमें प्रकाशित होना है और सबको करना है। हिन्दू आज पाखंड में फंसे रहते हैं, भागवत में फँसकर के श्री राधे बोलते रहते हैं तो दोष उनका नहीं है। पाखण्ड–प्रवर्तक व संचालक तो मछुआरे हैं जो जाल लेकर के बैठे हैं। हम मछलियाँ बनाकर उनके पास फँस रहे हैं तो दोष फँसने वालों का है।

पौराणिकों के अनुसार भी द्रोपदी का चीर बढ़ाने वाले श्रीकृष्ण गोपियों के वस्त्र हरण करके कैसे ले जा सकते हैं? जिन्होंने अपनी नीति से अधर्मियों का नाश किया, न्यूनतम धर्मात्माओं का नुकसान होने दिया, ऐसे महापुरुष को लांछित करने वाले, उन्हें सोलह हजार रानियों का भरतार बताते हैं। निश्चित रूप से वे राष्ट्रपति, सभापति की तरह उनके पति अर्थात् रक्षक थे, उनके भरतार नहीं थें किंतु यै मूर्ख भागवताचार्य इसका गलत अर्थ करके योगेश्वर श्रीकृष्ण को भोगेश्वर बना रहे हैं। दूसरी ओर महर्षि दयानंद ने श्रीकृष्ण को आप्त पुरुष कहकर के संबोधित किया है। हमें महर्षि के इस कार्य को आगे बढ़ाना है, हमें युवाओं के बीच कार्य करना है। युवा बचेगा तो परिवार, समाज व राष्ट्र बचेगा, अन्यथा नहीं।

जब इस राष्ट्र के साथ, यहाँ के नागरिकों के साथ हिंदू शब्द लग गया तभी से राष्ट्र और नागरिकों का पतन शुरू हो गया। तब विचारें कि हिंदू राष्ट्र बनने पर इस राष्ट्र का उत्थान कैसे हो सकता है? आर्य बनने पर ही राष्ट्र का उत्थान हो सकता है। हम महर्षि की इस पवित्र कर्मभूमि पर आते हैं। किंतु यहाँ आने के बाद भी यदि कर्म क्षेत्र में नहीं उतरते तो यहाँ आना व्यर्थ हुआ। महर्षि का कार्य केवल शासन की जिम्मेवारी नहीं है। हममें यदि राष्ट्र की और वसुधैवकुटुंबकम की भावना है तो हम सबको आगे आना होगा। राम ने धनुष, श्री कृष्ण ने सुदर्शन, शिव ने त्रिशूल धारण किया था। सरदार के पास कृपाण है। आप भी मोबाइल छोड़कर उठाओ हथियार और अन्याय, अज्ञान और अभाव के विरुद्ध निकाल पड़ो। अपसंस्कृति के विरुद्ध निकल पड़ो। जहाँ–जहाँ हमें पाखंड दिखता है, उसे नाश करने के लिए निकल पड़ो! तब जाकर के हमारा काम बनेगा!

यदि हम स्वाध्याय करते हैं और महर्षि के प्रति सच्चे समर्पित है तो हमारा डर चला जाना चाहिए। वेदों का संदेश जन–जन तक पहुँचाने के लिए आर्यसमाज में आकर एक ओम् ध्वजा के नीचे हमें आना होगा, तब महर्षि का मंतव्य पूरा होगा। स्वामीजी ने वानप्रस्थियों और सन्यासियों से मोह छोड़कर गाँवों में निकल पड़ने का आह्वान किया ताकि गृहस्थ भी उनके पीछे चल पड़ें। यज्ञोपवीत के तीन धागों में से एक धागा महर्षि का बताते हुए स्वामीजी महाराज ने ऋषि ऋण को उतारने के लिए सन्नद्ध होने का आह्वान किया। **आचार्य आर्यनरेशजीः** –स्वामीजी महाराज के व्याख्यान के पश्चात् आचार्य श्री आर्य नरेश जी ने सभी श्रोताओं से तीन बार 'ओ३म् प्रतिष्ठ' बुलवाकर कहा कि जब तक हमारा विश्वास, दृढ़

विश्वास, पूर्ण श्रद्धा ईश्वर पर नहीं होगी तब तक आप के, परिवार के, समाज के अंदर कोई परिवर्तन नहीं आ सकता। विश्वास क्या है? हम ईश्वर का मान करते हैं या नहीं? कहीं हम ईश्वर का अपमान तो नहीं कर रहे? मान करना– मानना! जो अपने से बड़ों की, श्रेष्ठों की, वैदिकों की, ईश्वर की बात को मानता है वही उनका मान करता है। जो अपने बड़ों की, श्रेष्ठों की, वैदिकों की, ईश्वर की बात को मानता नहीं वह इनका अपमान करता है।

प्रथम बार आने वाले श्रोताओं से उन्होंने कहा कि अपने हृदय पर हाथ रखकर विचारो कि क्या आप ईश्वर का वैसा मान करते हैं जैसा देव दयानंद ने किया और मर के भी परमात्मा का आश्रय नहीं छोड़ा। आपके घर में दोनों समय संध्या और एक समय यज्ञ होता है क्या? साठ वर्ष से ऊपर के लोगों ने वानप्रस्थ लिया है? यदि नहीं, तो आप देव दयानंद और परमात्मा का अपमान कर रहे हैं। जो यथासमय वानप्रस्थादि ना ले उन्हें दंडित किया जाए। ठीक उसीप्रकार, जैसे बालकों को विद्या ग्रहण नहीं करवाने वाले माता–पिता को दंडित करने का विधान है। सर पर चोटी, गले में जानेऊ, घर में यज्ञ किया या नहीं? परमात्मा अवश्य पूछेगा! क्या आपके बच्चों को गायत्री मंत्र का अर्थ आता है?

आचार्य जी ने बताया कि वे लगभग हर वर्ष हरिद्वार जाते हैं। वहाँ साठ वर्ष से अधिक आयु वाले वेदालंकार मिलते हैं। किंतु वानप्रस्थ लेने को तैयार नहीं है। एक उदाहरण दिया गुरुकुल में बालकों को शिक्षा के लिए प्रोत्साहन देने वाली माताजी के घर आचार्यजी गए तो वे 'ना घर तेरा ना घर मेरा चिड़िया रैन बसेरा' गा रहीं थीं। आचार्य जी ने उन्हें वानप्रस्थ के लिए प्रेरित किया। लम्बे समय बाद आचार्यजी जब गंगा के तटपर वानप्रस्थ आश्रम ज्वालापुर गए। वहाँ उन्होंने विद्या ग्रहण की थी, ब्रह्म मुनि जी से व्याकरण महाभाष्य पड़ा था।वहाँ वे माताजी वानप्रस्थ लिए हुए मिलीं।

आचार्यजी ने श्रोताओं से पूछा कि क्या वानप्रस्थ और संन्यास की चर्चा वाले सत्यार्थ प्रकाश के पाँचवें समुल्लास को निकालकर के फेंक दें। सभा में सन्नाटा छा गया। तब आचार्य जी ने कहा कि दयानंद दयानंद करने से कुछ नहीं होता, दयानंद की आज्ञा का पालन करो। तब उसकी जय करने में समर्थ होंगे।

आचार्यजी ने ऋग्वद १।१।६ **'यदङ्ग दाशुषे त्वमग्ने भद्रं करिष्यसि। तवेत्तत्सत्यमङ्गिरः'** का भावपूर्ण उच्च्चारण किया। इसका महर्षिकृत भाषा में पदार्थ व भावार्थ पाठकों के स्वाध्यायार्थ दिया जा रहा है।

'पदार्थः – हे (**अङ्गिरः**) ब्रह्माण्ड के अङ्ग पृथिवी आदि पदार्थों को प्राणरूप और शरीर के अङ्गों को अन्तर्यामीरूप से रसरूप होकर रक्षा करनेवाले हे (**अङ्ग**) सब के मित्र (**अग्ने**) परमेश्वर! (**यत्**) जिस हेतु से आप (**दाशुषे**) निर्लोभता से उत्तम–उत्तम पदार्थों के दान करनेवाले मनुष्य के लिये (**भद्रम्**) कल्याण, जो कि शिष्ट विद्वानों के योग्य है, उसको (**करिष्यसि**) करते हैं, सो यह (**तवेत्**) आप ही का (**सत्यम्**) सत्यव्रत=शील है

भावार्थः –जो न्याय, दया, कल्याण और सब का मित्रभाव करनेवाला परमेश्वर है, उसी की उपासना करके जीव इस लोक और मोक्ष के सुख को प्राप्त होता है, क्योंकि इस प्रकार सुख

देने का स्वभाव और सामर्थ्य केवल परमेश्वर का है, दूसरे का नहीं। जैसे शरीरधारी अपने शरीर को धारण करता है, वैसे ही परमेश्वर सब संसार को धारण करता है, और इसी से इस संसार की यथावत् रक्षा और स्थिति होती है।'

आचार्यजी ने ईश्वर की सिद्धि के लिए एक उदाहरण दिया। दुनिया के सभी लोगों की तरह एक युवक भी हर चीज को अपने आप हुआ मानता था। गोवा में उससे पूछाः प्राण कैसे चल रहे हैं? जवाब–ऑटोमेटिक! सूर्य चंद्रमा विधिवत कैसे चक्कर काट रहे हैं? जवाब–ऑटोमेटिक! इलेक्ट्रॉन न्यूट्रॉन प्रोटॉन की गति कैसे हो रही है? **बोला–ऑटोमेटिक।** तब आचार्यजी ने उससे कहा कि जितनी भी दुनिया में ऑटोमेटिक मशीनें हैं, प्रत्येक किसी मनुष्य द्वारा चलायी व बनाई जाती है। बिना किसी व्यक्ति के नियंत्रण किये या बिना बने कुछ भी ऑटोमेटिक नहीं हो सकता। भले ही 'सुपरनेचुरल पावर' के रूप में किन्तु न्यूटन और आइंस्टीन तक ने भी ईश्वर को माना है, जिसे ओ३म् नाम दिया है।

दूसरा भ्रम द्रव्य के बारे में है कि दुनिया मैटर से बनी है और अपने आप बन गई। वे नहीं जानते कि मैटर या प्रति निर्जीव है, जड़ है जो स्वयं कुछ नहीं बन सकती। सारी की सारी सृष्टि जीवनयुक्त और ज्ञानयुक्त है। इसे ज्ञानवान सत्ता परमात्मा ने बनाया है।

जोधपुर में दो नौजवान उनसे मिले। दोनों ने पूछा कि क्या देवता ईश्वर नहीं है? आचार्यजी ने मना किया। सर्वशक्तिमान परमात्मा जो बिना किसी की सहायता के कार्य करता है वही पूजनीय है, आराध्य है। जो देवता है वह अनुकरणीय है और हम हैं जो परमात्मा के आदेश की पालना और विद्वानों का अनुकरण करें। सदा आनंद में रहें वह भगवान! जो दुख में पड़ा रहे वह साधारण इंसान! तब तो पूछने लगे– क्या अवतार होता है? यजुर्वेद के '**स पर्यगा...**' मंत्र की सहायता से आचार्यजी ने समझाया कि परमात्मा का कोई आकार नहीं है, इसलिए वह अवतार भी नहीं लेता। उन्होंने पूछा– जब पाप बढ़ाते हैं तब भी अवतार नहीं होता?

आचार्यजी ने दृष्टान्त सुनाते कहा कि जिनके नाम से मोदीपुरम् हरिद्वार जाते हैं तब मार्ग में पड़ता है, उन डॉक्टर मोदी ने एक अंतरराष्ट्रीय धार्मिक कॉन्फ्रेंस रखी। विदेश से भी व्याख्याता आए थे। पहले दिन का व्याख्यान था कि जब संसार में पाप बढ़ाते हैं तो उनका नाश करने के लिए ईश्वर अवतार लेते हैं। दूसरे दिन शंका मांगी गई तो आचार्यजी खड़े हो गए, बोले– अगर पाप बढ़ने से अवतार होते हैं तो सबसे ज्यादा पापी युग सतयुग है जब सर्वाधिक अवतार हुए और कलयुग सर्वश्रेष्ठ युग है जिसमें कोई अवतार नहीं नहीं हुआ। सभा में सन्नाटा छा गया। दूसरे व्याख्याता के अनुसार सब कुछ ब्रह्म ही ब्रह्म है। आप भी और मैं भी। हमारी व्याख्या के अनुसार ब्रह्म एक ही है दूसरा कोई भी ब्रह्म नहीं है। आचार्यजी ने दूसरे दिन शंका समाधान के लिए हाथ खड़ा कर कहा कि सब कुछ ब्रह्म है तो शराब ब्रह्म पी रहा है, गौ हत्या ब्रह्म कर रहा है, कत्लेआम ब्रह्म कर रहा है, बलात्कार ब्रह्म कर रहा है। पंडाल में फिर हल्ला मच गया। आयोजक डॉक्टर मोदी आए और आचार्य जी के पैर छूकर के कहा कि आपने कमाल कर दिया।

जब राम मंदिर के लिए बाबरी अवशेष तोड़े गए तो आचार्यजी गाड़ी में थे। राम का चित्र लगा हुआ था और मिठाई बाँटते घूम रहे थे। आचार्यजी ने लिखा था कि हम राम के अनुयायी हैं। हमें शुद्ध रामायण लिखनी चाहिए। राम का अच्छा स्मारक बनाना चाहिए। श्री रामजी यज्ञ से पैदा हुआ थे अतः विराट यज्ञशाला उनकी स्मृति में बनानी चाहिए। आचार्यजी पिछले वर्ष प्रचार करते हुए नांदेड़ गए। एक विद्यालय में उनका प्रवचन हुआ। कार्यक्रम में सूचना करने एक व्यक्ति आया और राम मंदिर के लिए सहयोग मांगा। आचार्यजी ने कहा कि हनुमान जी बंदर कैसे बन गए जबकि माता अंजना और पिता पवन मनुष्य थे? तुम हनुमान जी को बंदर बना कर उनकी मूर्ति बनाकर सनातन धर्म, माता अंजना, पिता पवन और स्वयं हनुमान का अपमान करते हो। एक करोड़ रुपया मैं दिलवाऊंगा यदि श्री राम की स्मृति में विराट् यज्ञशाला बनाओ और श्रीराम के जिन अनुयायियों को जानवरों के रूप में दिखाया जाता हैं उन्हें मानवीय रूप में दिखाओ। वह टका सा मुँह लेकर उतर गया। एक मदारी भी अपने पालतू बंदर को हनुमान बोलता है। क्या अपमान नहीं होता? राम का नाम लेने से नहीं, राम के द्वारा किए जाने वाले पाँच महायज्ञ को करोगे तो कल्याण होगा।

आचार्य विष्णुमित्रजी वेदार्थी ने सब श्रोतावृंद से अपने साथ गायत्री मंत्र का उच्चारण करवा अपना व्याख्यान आरंभ करते हुए कहाः आजकल नवीन सनातनियों ने परमात्मा की उपासना के लिए एक शब्द बहुत व्यवहारित किया है और वह शब्द है पूजा। पूजा शब्द से छोटे से बालक से लेकर के बड़े तक सभी परिचित है। पूजा शब्द संस्कृत शब्द है जिसका अर्थ है सेवा करना। सांसारिक आंगन में हम देखते हैं की सेवा के लिए तीन वस्तुओं की आवश्यकता पड़ती है। जैसे माताएँ भोजन बनाती है तो भोजन बनाने के लिए अग्नि चाहिए, आटा चावल दाल सब्जी आदि पदार्थ चाहिए। इसी तरह पूजा में तीन वस्तुओं की आवश्यकता पड़ती है। पहली वस्तु का नाम है पूज्य। अपूज्य की पूजा नहीं होनी चाहिए। घर में माताजी है, पिताजी है, मार्गदर्शे विद्वान है– ये भी पूज्य हैं। लेकिन हम आज पूज्यों के भी पूज्य परमात्मा की चर्चा करने के लिए बैठे हैं। सारे ऋषि मुनि लोग, मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम, पतंजलि, कणाद, महर्षि दयानंद जैसे लोग जिसकी उपासना करके महान् बने, उन सब का पूज्य वह परमात्मा ही है।

पूजा के लिए दूसरी वस्तु चाहिए– पूजक! माता–पिता पूज्य है तो पुत्र पुत्री पूजक हो गए। आचार्य पूज्य है तो शिष्य पूजक हो गए।

पूजा के लिए तीसरी वस्तु की भी आवश्यकता है। सांसारिक व्यवहार में हम देखते हैं उस वस्तु का नाम है पूजा की सामग्री। सामग्री के बिना भी पूजा नहीं होगी। पूजा की सामग्री क्या हो–यह भी समझ लेना आवश्यक है। पूजा की सामग्री उस वस्तु को बनाना जो हमारे पूज्य की आवश्यकता है। माता की पूजा सिगरेट से नहीं हो सकती क्योंकि सिगरेट उनकी आवश्यकता नहीं है। जिसके बिना हानि हो जाए उसे आवश्यक कहते हैं। जैसे माता को रोटी खिलाये बिना, पिता को पानी पिलाये बिना, दादी जी को आराम करवाए बिना उन्हें हानि होगी। अतः भोजन, पानी और शैया आवश्यक वस्तुएँ हैं। आर्यसमाज में तो उन्हीं मान्यताओं

को परोसा जाता है जो सत्य हैं जिनका नाम सिद्धांत है।

अब आध्यात्मिक आंगन की ओर चलें। हमारा आध्यात्मिक आंगन है मनमंदिर जहाँ आँख की पहुँच नहीं है, इंद्रियों की पहुँच नहीं है। बहुत सुंदर सूक्ष्म जगत इस मनमंदिर में विद्यमान है। जब हमारे जीवन में आत्मा का राज्य चलता है। आत्मा की इच्छा के बिना इंद्रियां एक भी चेष्टा नहीं करती। जहाँ आत्मा की इच्छा के बिना हमारा सेवक मन कोई विचार नहीं करता। शरीर आत्मा के नियंत्रण में रहकर काम करता है। जहाँ आत्मा का साम्राज्य चलता है। जीवन की उस स्थिति का नाम है आध्यात्मिक आंगन। महर्षि दयानंद, श्रीराम, गौतम और कणाद जैसे लोग आध्यात्मिक आंगन के खिलाड़ी थे। आध्यात्मिक आंगन में पूज्य केवल परमात्मा की ही उपासना करनी है। परमात्मा को छोड़कर अन्य किसी की उपासना नहीं करनी है।

आचार्य जी ने आगे कहा– जो जीवन भर मांस खाता रहा, पक्का मुसलमान था, कुरान का अनुयायी बनकर रहा। ऐसे दुष्ट व्यक्ति साईं को हमने अपनी अविद्या से, स्वाध्याय हीनता से भगवान के स्थान पर रख उसका पूजन आरंभ कर दिया। इससे बड़ी दुर्गति हमारी और कोई हो नहीं सकती। आर्यसमाज के द्वारा सोशल मीडिया में प्रचार के द्वारा, सनातन धर्म के प्रचार के द्वारा अब लोगों के घर से दुष्ट साईं की मूर्ति निकलने लगी है। आध्यात्मिक आंगन में पूजनीय केवल परमात्मा है और हम आध्यात्मिक आंगन में उसी के पुजारी हैं।

यह बगीचा महर्षि दयानंद ने लगाया जहाँ आप आध्यात्मिक आंगन के पुजारी हो! दयानंद रूपी कोयल यदि वेद की वाणी नहीं बोलते तो हमें आध्यात्मिकता कहाँ मिलती।

जब आध्यात्मिक आंगन में हम बैठे हैं,

घर में, विद्यालय में, बाजार में, सांसारिक आंगन है। जब हम चिंतन में बैठते हैं ध्यान में बैठते हैं तब वह आध्यात्मिक आंगन होता है। उस समय हमारा उपास्य ना श्रीराम है ना महात्मा हनुमान है ना महर्षि दयानंद बल्कि एकमात्र परमपिता हमारा उपासनीय है, पूज्य है। श्रीराम, महात्मा हनुमान, महर्षि दयानंद सांसारिक आंगन में हमारे लिए पूजनीय है, अनुकरणीय है। महर्षि ने कहा भी है कि जिसमें केवल परमेश्वर का ही चिंतन किया जाए वह संध्या है। हमें राम का चिंतन नहीं करता है, बल्कि श्रीराम जिनका चिंतन करते थे उस परमपिता परमात्मा का चिंतन करना है। युद्ध में भी संध्या को आकर योगेश्वर कृष्ण जिनका ध्यान करते थे वह परमपिता परमात्मा ही हमारा उपास्य है।

पूजन की सामग्री के बारे में श्रोताओं को समझाते हुए आचार्य जी ने कहा कि परमात्मा से पूछना चाहिए कि उनकी जरूरत क्या है? खीर चाहिए, दूध चाहिए या हलवा चाहिए तो रसोई में बनाएँ। हमारे देश में ही नहीं, दुनिया भर में कुछ वर्ष पहले स्वाध्यायहीन मूर्ख लोगों ने मूर्तियों को दूध पिलाया था। आचार्य जी कहते हैं कि उस दिन एक व्यक्ति मेरे पास आया और कहा कि आज आर्यसमाज का सिद्धांत धराशाई हो रहा है। आप स्वयं चलकर देख लो कि मूर्तियाँ दूध पी रही हैं। आचार्यजी ने कहा 'मुझे चलने की आवश्यकता नहीं है। महर्षि द्वारा दी गई पंचपरीक्षा के आधार पर मैं यहीं बैठा बता सकता हूँ कि कोई भी पत्थर की मूर्ति दूध नहीं

पी सकती और परमात्मा को किसी भी पदार्थ की आवश्यकता नहीं है। क्योंकि आवश्यकता अभाव से उत्पन्न होती है। विश्वंभर को भरण पोषण के लिए फल, खीर या हलवे की आवश्यकता नहीं है। पत्थर पर हलवा पूरी चढ़ने वाले की समाधि कभी नहीं लग सकती।

एक महान योगी समाधि से जुड़ गया और परमात्मा से बोला कि हे प्रभु अपने विषय में मुझे बता। वह योगी महर्षि दयानंद समाधि से उठकर के खिलखिलाकर हँसा और दुनिया से बोला कि दुनिया वालों! आओ! मैं तुम्हें भगवान द्वारा प्रदत्त उपदेश सुनाता हूँ और महर्षि दयानंद ने अपने लिखे शास्त्रों में परमात्मा ने जो अपने बारे में जो भी बताया वह बताते हुए लिखा कि परमात्मा पूर्ण सुख स्वरूप है! वह आनंद स्वरूप है! उसे जड़ जगत आदि भी किसी ने दिए नहीं है, किंतु वह तो इस जड़ जगत का स्वामी और हमारा स्वामी भी आरंभ से ही है। हमारे पास सत्य सिद्धांत हैं। उन सिद्धांतों को जन–जन तक पहुंचाने में हम पूरा प्रयास करें। हम सांसारिक आंगन में ईश्वर, जीव और प्रति तीनों का गुणगान करें। किंतु आध्यात्मिक आंगन में तो केवल और केवल परमात्मा ही उपास्य है, पूज्य है!

आचार्य जी ने कहा कि पौराणिकों से पूछना चाहिए कि भगवान को हलवा बताशे या पैसा चढ़ाते हो तो क्या पूछ कर चढ़ाते हो या मन में यह सोचा करते हो कि 'हे मेरे दुखियारे भगवान! जिसे थोड़ा सा चढ़ावा दे देता हूं कि अपने दुख को मिटा करके सुखी हो जा और यदि यह भेंट मैं नहीं देता तो तू मेरे दान के बिना दुखी का दुखी बना रहता। ले मेरा दिया हुआ पदार्थ लेकर के सुखी हो जा।' क्या यह सोचकर परमात्मा को कुछ देना चाहिए? नहीं! परमात्मा तों स्वयं सुखस्वरूप है। उसे कोई अभाव नहीं है। इसलिए यह देने का अभिनय हमें नहीं करना चाहिए!

आचार्यजी ने आगे बताया कि पूजा के दो लक्षण है। माता–पिता गुरुजनों का सम्मान करना, आज्ञा का पालन करना, उनकी आवश्यकता के अनुसार पदार्थ देना उनकी पूजा का एक स्वरूप है। इन सब से मार्गदर्शन लेना भी पूजा का एक लक्षण है। समस्त शास्त्रों में परमात्मा की पूजा का लक्षण परमेश्वर को कुछ देना नहीं लिखा है। किंतु परमेश्वर की पूजा का लक्षण परमेश्वर से केवल ग्रहण करना है। इसलिए ईश्वरस्तुतिप्रार्थनोपासना में विधेम शब्द का अर्थ करते महर्षि कहते हैं–योगाभ्यास और अति प्रेम से विशेष भक्ति किया करें।

यदि परमात्मा से लेना ही उसकी पूजा है तो उससे कुछ ग्रहण करने की तकनीक भी हमें आनी ही चाहिए। इसके तीन प्रकार हैं। पहला प्रकार है स्तुति, दूसरा है प्रार्थना और तीसरा प्रकार है उपासना।

स्तुति का अर्थ है गुणगान करना, बढ़ाई करना, प्रशंसा करना, जो वस्तु जैसी है उसे वैसा ही जानना, वैसी ही मानना और वैसा ही सत्य उच्चारण करना। इस सत्य भाषण का नाम स्तुति है। इसके विपरीत निंदा होता है जिसकी परिभाषा स्तुति से विपरीत है। समयाभाव से आचार्यजी ने व्याख्यान समाप्त किया। शांति पाठ और जयकारों के बाद मंडप में उपस्थित सभी जनों ने भोजनार्थ प्रस्थान किया।

मिति आश्विन कृष्णपक्ष १२ संवत् २०८१ विक्रमी रविवार २६.०६.२०२३

सायं सत्रः अथर्ववेद खण्ड पारायण यज्ञ

स्थानः यज्ञशाला

महर्षि दयानंद सरस्वती स्मृति भवन न्यास द्वारा आयोजित चार दिवसीय १४१ वाँ ऋषि स्मृति सम्मेलन में मिति आश्विन कृष्णपक्ष १२ संवत् २०८१ विक्रमी रविवार २६.०६.२०२३ खीस्ताब्द को सायंकाल महर्षि दयानंद सरस्वती स्मृति भवन में ही विराजमान न्यास के आजीवन न्यासी आचार्यश्री वरुणदेवजी के ब्रह्मत्त्व में अथर्ववेद के २८वें प्रपाठक के प्रथम सूक्त के १५० वें मंत्र से खंड पारायण यज्ञ आरंभ हुआ।

प्रथम विराम पर आचार्यश्री ने बताया कि जिस मंत्र की व्याख्या वे करने जा रहे हैं उस मंत्र में यक्ष्मा रोग से बचाने के उपचार की जानकारी है। यक्ष्मा में मांस क्षीण होता जाता है व शरीर सूखता जाता है। आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में इसका इलाज डॉट नामक दवाई से होता है। पुराने समय में नौ महीने तक निरंतर यह दवा खानी पड़ती थी। आजकल छः महीने खानी पड़ती है। छः महीने में ठीक नहीं हुआ तो बारह महीने तक खानी पड़ती है। उसमें भी नहीं होने पर चौबीस महीने खानी पड़ती है। उसके बाद इलाज नहीं है। तब रोगी को सेनेटोरियम में रख देते हैं। ताकि अन्य को यह बीमारी नहीं लगे। आयुर्वेद ने इस रोग पर बहुत काम किया है और अथर्ववेद के इस मंत्र में एक औषधि दी है। मंत्र हैः

नडमा रोह न ते अत्र लोक इदं सीसं भागधेयं त एहि। यो गोषु यक्ष्मः पुरुषेषु यक्ष्मस्तेन त्वं साकमधराङ्परेहि।। अथर्ववेद काण्ड १२ सूक्त २ मन्त्र १।।

यह मंत्र कहता है कि सरकंडे के ऊपर चढ़ जा। यह संसार तेरे लिए नहीं है। अर्थात् सरकंडे के द्वारा टीवी को नाश करने वाली औषधि बनेगी। यह सीसा तेरा भागधेय है अर्थात् किसी के शरीर में टीबी का रोग आ गया तो उसे सीसे की भस्म बनाकर प्रयोग करनी चाहिए। आयुर्वेद शास्त्र में इसे नाग भस्म कहते हैं। सरकंडो के ऊपर रखकर सीसे को जलाते हैं जिससे इसकी भस्म बन जाती है। इस भस्म का प्रयोग करने पर यह टीबी रोग नाश को प्राप्त हो जाता है। तू यह भस्म प्रयोग कर राजरोग टीबी को नष्ट कर दे। शरीर में किसी भी प्रकार का यक्ष्मा हो जाए, घुस जाए, मांस कम हो जाए, रक्त कम हो जाए, अस्थि में क्षीणता हो जाए। इन सब में यह सरकंडों पर जलाकर बनाई गई सीसे की भस्म उपयोगी होती है। गायों में भी ऐसी स्थिति हो जाए, मनुष्यों में भी यक्ष्मा में हो जाए इस औषधि के द्वारा तुझे हम अच्छे प्रकार से शरीर से नीचे उतार देते हैं। टीबी को रहने नहीं देंगे। आचार्यजी ने बताया कि आधुनिक वैज्ञानिक यह मानते हैं की एफबी नामक कीटाणु से टीबी रोग होता है। किंतु वेद में इसका कारण बताया है कि जो लोग पाप की प्रशंसा करते हैं, इन पाप के कारण की भी कोई प्रशंसा करता है, या स्वयं पाप का अनुकरण करता है सारे प्रकार का यक्ष्मा रोग हमारे शरीर में पांच तत्व है साथ धातु है में बड़ा के अलावा एक तेरावी अग्नि जाता रागिनी है इनमें से कोई भी अग्निक सीन हो जाए तो हमें टीवी हो जाती है मंत्र कहता है कि मैं इस शरीर में से टीवी के

द्वारा होने वाली मृत्यु को निकाल कर बाहर ही फेंक देता हूँ। इस व्याख्या के पश्चात् मंत्रों से आहुति का क्रम पुनः आरंभ हुआ।

द्वितीय विराम पर आचार्यजी ने बताया कि अथर्व वेदों के मंत्र बहुत सरल है। मंत्रों के माध्यम से परमेश्वर ऐसी बात करता है, जैसे हमारा पिता हमसे बात करते हैं। मंत्र है:

समिन्धते संकसुकं स्वस्तये शुद्धा भवन्तः शुचयः पावकाः। जहाति रिप्रमत्येन एति समिद्धो अग्निः सुपुना पुनाति।। अथर्ववेद काण्ड १२ सूक्त २ मन्त्र११ ।।

मंत्र की व्याख्या आरंभ करते आचार्यजी **समिन्धते** को समझाते कहा: शव की सद्गति के लिए उत्तम ईंधन से अच्छी प्रकार अग्नि प्रज्वलित करते हैं ताकि उस शव का कल्याण हो। ऐसा (शव का अच्छी प्रकार संस्कार) करने से आप पवित्र हो जाते हैं। भीतर की भी पवित्रता होती है। आप में दूसरों को भी पवित्र करने की क्षमता आ जाती है। जो भी निंदा की बातें हैं, पाप है, अग्नि के तीव्र प्रदीप्त होने से निंदनीय गुण दूर हो जाता है। अच्छी प्रकार से इसका पाप दूर हो जाता है, जबकि अग्नि को अच्छी प्रकार प्रदीप्त किया जाता है।

जब कोई व्यक्ति मर जाता है तो हम सभी लोग प्रार्थना करते हैं कि परमात्मा इसे शांति और सद्गति प्रदान करें। यही सद्गति **संकसुकं** है।

संकसुकं का एक अर्थ परमात्मा भी होता है, परमात्मा के प्रति स्नेह की अग्नि। जब व्यक्ति अच्छी प्रकार अग्नि प्रज्वलित करता है तब अंदर और बाहर से पवित्र होकर समस्त पापों से छुटकारा मिल जाता है।

अस सत्र के लिए निर्धारित अथर्ववेद के मंत्रों से आहुति हो जाने के बाद न्यास के सहयोगी श्री देवेंद्रजी सोनी का आज जन्मदिन होने के कारण जन्मदिन की विशेष आहुतियाँ प्रदान करवाई गई। श्री देवेंद्र जी सोनी प्रतिवर्ष इस दिन स्मृति भवन में कार्यक्रम में सपरिवार सम्मिलित होकर अपना जन्मदिन यहीं मानते हैं और सायंकाल के भोजन में मिठाई उनके परिवार की ओर से ही बनती है।

पूर्णाहूति प्रकरण सम्पन्न कर यजमानों को आशीर्वाद दिया गया। अग्निहोत्र के बाद सामूहिक ब्रह्म यज्ञ के साथ ही यह सत्र समाप्त हुआ

मिति आश्विन कृष्णपक्ष १२ संवत् २०८१ विक्रमी रविवार २६.०६.२०२३

रात्रि सत्रः भजन–प्रवचन

स्थानः पाण्डाल

भोजनोपरान्त पांडाल में रात्रिकालीन सत्र का आरंभ करते हुए भजनोपदेशक पंडित **राजेश जी अमर प्रेमी** ने गायत्री मंत्र और उसके अर्थ का सुमधुर गान करके आरंभ में **'तू बन जा भला, सारी दुनिया भली, खिला जो तेरा मन, तो दुनिया मिली'** प्रस्तुत कर श्रोताओं को आमंत्रित किया। ' तत्पश्चात उन्होंने आज रसोईए द्वारा महर्षि को विष देने का ऐतिहासिक दिवस होने के कारण ऋषि भक्ति के चार भजन सुनाए: – पहला **'अगर स्वामी**

दयानंद ना हमारा ना खुदा होता, ना हम होते ना तुम होते ना कश्ती का पता होता।' दूसरा **'न कोई साथी सखा सहेला, विजय के पथ पर चल अकेला। नदी के पानी का बन के रेला, विजय के पथ पर चल अकेला।।'** तीसरा **'संसार का किया है उपकार महर्षि ने, अपनों से विष पिया है कई बार महर्षि नेऽऽऽ।'** और चौथा **'दयानंद स्वामी ने, वेद अनुगामी ने, भारत का किया बेड़ा पारऽऽऽ।'**

आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान के यशस्वी मंत्री श्री जीवर्धनजी शास्त्रीः – शास्त्रीजी ने ऋग्वेद के दसवें मण्डल के एक सौ अट्ठाईसवें सूक्त के चौथे मन्त्र **मह्यं यजन्तु मम यानि हव्याकूतिः सत्या मनसो मे अस्तु। एनो मा नि गां कतमच्चनाहं विश्वे देवासो अधि वोचता नः।।** का मधुर उच्चारण करके राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्तजी के अमरकाव्य 'भारत–भारती' के भविष्यत्खण्ड की हृदयस्पर्शी उत्साहवर्द्धक पंक्तियाँ गायीं, उनमें से चार पंक्तियों को उद्धृत करने का लोभ मैं संवरण नही कर पा रहा हूँ: –

सबकी नसों में पूर्वजों का पुण्य रक्तप्रवाह हो,
गुण, शील, साहस, बल तथा सबमें भरा उत्साह हो ।
सबके हृदय में सर्वदा समवेदना का दाह हो,
हमको तुम्हारी चाह हो, तुमको हमारी चाह हो।।

तत्पश्चात् पांडाल में उपस्थित आर्यजनों को संबोधित करते हुए मंत्रीजी ने कहा कि आज ही का वह दिन था जो आर्यजगत के लिए बड़ा दुखदाई दिन भी था। आज ही के दिन इसी परिसर में महर्षि दयानंद को उनके रसोईये जगन्नाथ के माध्यम से विष दिया गया था।

महर्षि दयानंद ने अपने जीवन में आर्यसमाज के लिए जितना कार्य किया और मरणोपरांत अपने व्यक्तित्व और कृतित्व के माध्यम से जो मार्गदर्शन दिया, उससे उनके त्याग और तपस्या के प्रतिमूर्ति अनुयायियों ने विश्व भर में आर्यसमाज को फैलाने का कार्य किया।

मैं आदिवासी और वनांचल में कार्य कर रहा हूँ। वहां भी मैं ऋषि दयानंद को ढूंढने का प्रयत्न करता हूँ। महर्षि उदयपुर में सत्यार्थ प्रकाश के द्वितीय संस्करण का कार्य कर रहे थे। जब शाहपुरा नरेश ने उन्हें अपने यहां आमंत्रित किया तब महर्षि उदयपुर से चित्तौड़ होकर शाहपुरा जा रहे थे। महर्षि ने चित्तौड़ के किले का दर्शन किया। जब वे नीचे उतर रहे थे, तब साथ में चल रहे आत्मानंद ब्रह्मचारी से महर्षि ने कहा कि कि आज हम जिस पवित्र स्थान के दर्शन करके आए हैं, वहां अनेकों माताओं ने अपने सतीत्व की रक्षा के लिए, नारियों के मृत शरीर की भी दुर्गति करने वाले मुस्लिम आक्रांताओं से अपने शव की भी रक्षा के लिए हजारों की संख्या में उन्होंने जौहर किया। ऐसी धरती को देखकर हम नीचे उतर रहे हैं। ऐसी तपस्थली में बालक और बालिकाओं के गुरुकुल स्थापित हों तो पूरे देश में नाम होगा और उन गुरुकुलों से निकले उपदेशक धरा पर वैदिक धर्म का प्रचार करेंगे। महर्षि के तत्समय के अनुयायीयों ने महर्षि के एक वाक्य को भी सुना तो उसे साकार करने के लिए उसने अपना जीवन लगा दिया और आर्य समाज के लिए अनूठे कार्य करने का दूस्साहस उन लोगों ने किया। ब्रह्मचारी आत्मानंद के गुरुकुल कांगड़ी में अध्ययन कर रहे एक ब्रह्मचारी युधिष्ठिर ने

भी इन शब्दों को पढ़ा। वह ब्रह्मचारी युधिष्ठिर जो चार भाइयों में सबसे छोटा था, जब स्नातक बन समावर्तन के बाद घर गया तो पिता की इच्छा थी कि गुरुकुल से पढ़कर आएगा तो गृहस्थ में प्रवेश करवाऊंगा। किंतु यह ब्रह्मचारी पिता के पास जाकर पिता के विचारों को भूल जाने को कहा और महर्षि के विचारों की बात करके कहा कि मैं महर्षि के गुरुकुल के स्वप्न को साकार करना चाहता हूँ। आपकी चल और अचल संपत्तियों में से मुझे अभी ही बँटवारा करके अपना हिस्सा दे दीजिए। पुत्र के तेजस्वी विचारों की जिद के सामने पिता को झुकना पड़ा और उन्होंने शेष तीनों पुत्रों को बुलाकर चार हिस्सों में बँटवारा करके एक हिस्सा ब्रह्मचारी युधिष्ठिर को दे दिया। छोटे भाई को चल संपत्ति के रूप में अपना हिस्सा दिया गया। वहाँ से वह ब्रह्मचारी चित्तौड़गढ़ आया। वही ब्रह्मचारी युधिष्ठिर स्वामी व्रतानन्द बना। गुरुकुल चित्तौड़गढ़ की स्थापना की। उस जमाने में पिता से प्राप्त संपत्ति से साठ बीघा जमीन क्रय की और गुरुकुल का निर्माण किया। बालकों का गुरुकुल बनाने के बाद बालिकाओं के गुरुकुल की चिंता लगी। तब स्वामी व्रतानंद के त्याग की चर्चा उरयपुर के महाराणा भूपाल सिंह के पास भी पहुँची।

चित्तौड़ के ही पास प्रतापनगर में उस समय झुग्गी झोपड़ियां थी। 'मीठा राम का खेड़ा' नाम का ग्राम था जहाँ सांप बिच्छू बहुत होते थे। वहां सत्यवीर वर्णी नाम का एक गुरुकुल का ब्रह्मचारी था। स्वामी स्वतंत्रानंद और सत्यवीर वर्णी अध्ययन के समय मीठा राम के खेड़ा जाते और गांव के बच्चों को इकट्ठा करके पेड़ के नीचे पढ़ाया करते थे। साथ ही सत्यवीर वर्णीजी बीमार और सर्प–बिच्छू के काटे हुओं को आयुर्वेद की दवाई दिया करते थे। वह समस्त भूमि जहाँ ये दोनों तपस्वी शिक्षा और चिकित्सा चलाते थे उदयपुर नरेश महाराणा भूपालसिंह की थी। जब महाराणा भूपालसिंह उधर आए और वहां पर यह शिक्षा और चिकित्सा का मेला सा देखकर दोनों से पूछा क्या कर रहे हो? उन्होंने कहा कि गाँव की सेवा कर रहे हैं। महाराणा भूपाल सिंह ने चार कमरे वहां बनाकर वह जमीन ग्राम सेवा आश्रम के नाम से उनको दे दी। वहाँ कन्या गुरुकुल स्थापित है। यह कन्या गुरुकुल बाद में बंद सा हो गया था। ऐसी स्थिति में मुंबई में किसी महाविद्यालय में अध्यापन करने वाले डॉक्टर सोमदेव शास्त्री जो मंदसौर के मूल निवासी है– सेवानिवृत्त होने के बाद आर्यसमाज के प्रचार में संलग्न थे। तब उन्हें चित्तौड़गढ़ का आमंत्रण मिला। चित्तौड़ पहुँचते ही कोरोना का लॉकडाउन हो गया तो महाराणा भूपालसिंह प्रदत्त जमीन पर लोगों ने अतिक्रमण आरंभ कर दिया। तब डॉक्टर सोमदेव ने आचार्य जीववर्धनजी को बुलाया और कहा कि आपका सहयोग मिले तो मैं यहां पर सेवा करने का कुछ उद्योग करूं। आचार्यजी ने कह दिया कि जहां डॉ0 साहब का पसीना बहेगा वहां हमारा खून बहेगा। सोमदेव जी ने भजनोपदेशक सम्मेलन वहीं कराया और दूसरी तरफ ठेकेदारों को बुलाकर के निर्माण आरंभ किया। तब नगर परिषद के लोग आ गए और हम लोगों ने आसपास के आर्य समझो को इकट्ठा किया और परिणाम स्वरुप चारदीवारी सुरक्षित करके कन्या गुरुकुल आज वहां सुचारू रूप से संचालित हो रहा है।

एक और प्रेरणास्पद घटना सुनाते मंत्रीजी ने कहा– सब विधवा विवाह और पुनर्विवाह

की वकालत मात्र करते हैं। लेकिन आर्यसमाज ने इनको करके दिखाया। अलवर से ३०–३५ किलोमीटर दूर बंसपाल गांव है जहां आर्यसमाज बंद पड़ा है। उसके इतिहास को जब जानने का प्रयास किया तो पता चला कि १९०२ में इस आर्यसमाज की स्थापना हुई थी। इस आर्यसमाज के भवन को जिस परिवार ने बनाया, उसके कुछ लोग आजकल दिल्ली में निवास करते हैं। मंत्रीजी दिल्ली गए और पंजाबीबाग निवासी धर्मपालजी गुप्ता के घर पहुंचे तो रोने लगे। कहने लगे प्रतिनिधि सभा इस आर्यसमाज को आकर संभाले। उस आर्यसमाज ने लाला लाजपत राय पर लाठियां बरसाने की बरसाने की, भगत सिंह को फांसी करने की, अंग्रेजों के हर अत्याचार की उस आर्यसमाज ने सजगतापूर्वक भर्त्सना की थी। उसी गुप्ता परिवार के एक पुरुष ने एक विधवा संग विवाह कर लिया जिसके कारण अलवर नरेश ने उनको देश निकाला दिया। तब उन्होंने दिल्ली के सीताराम बाजार आर्यसमाज में जाकर के शरण ली। समझौता नहीं किया! बाद में कुछ समझदार लोगों ने राजा के सामने उस बाल विधवा के कल्याण करने के कार्य की वास्तविक घटना का पूरा विवरण बता कर अलवर नरेश को कहा कि ऐसे कार्य करने वाले को तो प्रोत्साहित करना चाहिए। तब राजा ने क्षमा करके उन्हें वापस गांव बुलाया।

उदयपुर में महर्षि को लोगों ने बताया कि भीलों की दशा बहुत खराब है। वे अज्ञान और अभाव में जी रहे हैं। मद्य और मांस सहित गलत संस्कारों में डूबे हुए हैं। इनका उद्धार करने वाला कोई व्यक्ति चाहिए। महर्षि ने उसी क्षेत्र में व्यक्ति ढूंढा। राजा, महाराजा, जागीरदार भील लोगों से बेगारी कराते थे। बिना खाए पिए, बिना तनख्वाह दिए मजदूरी करनी पड़ती थी। ऐसे अत्याचारों की स्थिति में गोविंद गिरी नामक एक भेड़ों का चरवाहा था। उसके बारे में महर्षि को पता चला। तब महाराज सज्जन सिंह के अतिथिगृह में उस भेड़ चराने वाले पति–पत्नी को आमंत्रित कर अपने साथ रखा। उनकी अवस्था को समझने का प्रयास किया। अक्षर ज्ञान कराने का प्रयास किया और निर्देश दिया कि वे भीलों के बीच में जाकर बेगार प्रथा के विरुद्ध काम करें, मुक्ति आंदोलन चलाएँ। कहा भीलों को शराब और मांस से छुड़वाओ! सात्विक प्रवृत्ति से जोड़ो! दोनों पति–पत्नी ने संत सभा बना करके उस क्षेत्र में कार्य किया और १८८२ से काम करते हुए १९१३ में जाकर के जो संगठन बनाया था तो मानगढ़ के पहाड़ पर जहाँ राजस्थान व गुजरात सीमा है और मध्य प्रदेश का भी कुछ हिस्सा लगता है– वहाँ तीनों प्रदेशों के संगम पर मानगढ़ के पहाड़ पर १९१३ में डेढ़ दो लाख लोगों को एकत्र किया और अंग्रेजी सरकार और सामंतप्रथा के विरुद्ध आवाज उठाई जिसका पता लगने पर ईसाई पादरी नरोना ने अंग्रेज सरकार को पत्र लिखा और गोविंद गिरी द्वारा चलाई जा रही संत सभा को अंग्रेजों के विरुद्ध बताते हुए उसे कुचल देने को कहा। अंग्रेजों की सेना ने मानगढ़ पहाड़ को तीनों तरफ से घर कर गोलियां चलाई जिसके परिणाम स्वरुप १५०० भील उस समय शहीद हुए। लगभग ४०० लोगों की शहादत से जलियांवाला बाग प्रसिद्ध हो गया और १५०० लोगों की शहादत का साक्षी मानगढ़–कांड इतिहास में कहीं छुप गया। भारत सरकार के गजट में इसका विवरण है जिसको २००६ में निकलवाया २००७ में गोविंद गिरी के

जीवन को प्रकाशित कराया। सीतावाड़ी,केलवाड़ा निवासी आचार्य वेदप्रियजी शास्त्री को आमंत्रित कर पूरा रिसर्च करके वेदप्रियजी से एक किताब बनवाई 'मानगढ़ क्रांति के महानायक गोविंद गिरी'। उसकी दस हजार प्रतियाँ प्रकाशित कर इस बलिदान को प्रचारित किया और तब राज्य सरकार ने वहां स्मारक बनाने का कार्य किया, प्रधानमंत्री भी आए और विश्वविद्यालय गोविन्दगिरि के नाम से बनवाया है।

मंत्रीजी ने कहा कि महर्षि ने अपने जीवनकाल में और पश्चात् उनके अनुयायियों ने उनके कार्य को बढ़ाया है। आर्य प्रतिनिधि सभा के बैठक में आर्यसमाजों के बंद होने, अतिक्रमित होने, विद्यालयों द्वारा कब्जा कर लेने की शिकायतें प्राप्त हुई है। नई पौध हम तैयार नहीं कर पा रहे हैं। चलिए! हम आर्यसमाज को फिर से जागृत करें, फिर से आर्यसमाज को आंदोलनात्मक स्वरूप प्रदान करें। आप लोग आर्यसमाज के जिस किसी भी आंदोलन का आपको पता चले, जीवन के अंतिम चरणों में भी वहां अवश्य जाना। आर्यसमाज की संपत्ति, आर्यसमाज के विचारों, आर्यसमाज के सिद्धान्तों का प्रचार प्रसार करके महर्षि दयानंद को सच्ची श्रद्धांजलि देवें। महर्षि की विचारधारा को जगती में जीवित रखने का कार्य करें।

आचार्य विष्णुमित्रजी वेदार्थी: – मंत्रीजी के प्ररणादायक व्याख्यान के पश्चात् आचार्य विष्णुमित्रजी वेदार्थी ने शयनमंत्रों के प्रथम मंत्र **यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवन्तदु सुप्तस्य तथैवैति। दूरङ्गमञ्ज्योतिषाञ्ज्योतिरेकन्तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु।।** का सामूहिक पाठ कराकर विद्यार्थियों के संबंध में वार्ता करते हुए कहा कि हम सभी को सदा विद्यार्थी बने रहना चाहिए। यदि सफल विद्यार्थी बनना चाहते हो तो ऐसे सत्संग में जब भी आओ तो सजकर के आया करो। पाठशाला में अपने बच्चों को भी सजा कर भेजा करो। किंतु यह जानलो कि किससे सजाना है। शरीर को नहीं सजाते! जैसे हम खीर को चम्मच से खाते हैं वैसे ही पाठशाला में ज्ञान रूपी खीर को खाने की जो चम्मच है उसका नाम है **अंतकरण।**

शरीर को सजाकर नहीं आना है। शरीर को सजाओगे तो अभिमान होगा। मन विषयों की ओर भागेगा। विद्याभ्यास रुक जाएगा। अतः शरीर को नहीं सजाना है, मन को सजाना है। कानों को कुंडल से सजाते हैं, हाथों को कंगन से सजाते हैं। किन्तु अपने मन को किस आभूषण से सजाना चाहिए? क्या मन को सजाने वाला आभूषण जोधपुर के किसी स्वर्णकार की दुकापन में नहीं बनता? उसे आभूषण का नाम वेदों में परमात्मा ने बताया है।

आचार्यजी ने कहा कि यदि छः शयनमंत्रों को किसी ऋषि या योगी को दे दिया जाए तो इन छह मंत्रों में इतना ज्ञान विज्ञान और संपत्ति है कि केवल इनसे ही कोई भी ऋषि योगदर्शन की रचना कर सकता है। योगदर्शन उस शास्त्र का नाम है जिसमें परमात्मा को प्रत्यक्ष करने की पूरी पद्धति का वर्णन किया गया है। योगदर्शन की एक भी बात ऐसी नहीं है जिसका मूल इन छह मंत्रों में विद्यमान ना हो।

मन को जिस आभूषण से सजाना है उसका नाम है अवधान। सावधान शब्द के माध्यम से समझाते हुए कहा कि सावधान का संधि विच्छेद करो। स धन अवधान। अवधान का शब्दार्थ है ध्यान, एकाग्रता। जब मन के आगे एक ही वस्तु का वास होवे तो मन की उसे

स्थिति का नाम एकाग्रता है। उस समय मन में किसी दूसरी वृत्ति का प्रवेश ही नहीं होता, तब मन अवधान से सुसज्जित होता है। अपने मन को अवधान से सजा कर जो सत्संग भवन में आता है और असज्जित आता है– उन दोनों में कितना अंतर है यह बताते हुए आचार्य जी ने कहा कि जिस समय संचालक महोदय किसी वक्ता को व्याख्यान के लिए निमंत्रित करते हैं उस समय अवधान से सुसज्जित श्रोता अपने मन ही मन में एक वाक्य बोलते हैं कि अब व्याख्यान वेदी पर वेद के आलोक से प्रकाशित व्याख्याता का आगमन होने वाला है। ज्योंही उनका आगमन ध्वनि विस्तारक यंत्र के समक्ष होगा, इस समय हम श्रोताओं के ऊपर पुष्प की वर्ष आरंभ हो जाएगी। उन पुष्पों का नाम है शब्दपुष्प। आप भी यदि अपने मन को अवधारणा से अलंत करके लाए हो तो आपने भी सोचा होगा कि यह जो शब्दपुष्प की वर्षा हम पर हो रही है तो हम भी भ्रमर बनाकर बैठेंगे। जैसे भ्रमर पुष्प में से पराग को चुन चुन कर सेवन करता है वैसे ही व्याख्याता के वक्तव्य में से ज्ञान का पराग निकाल कर अपने अंतःकरण के चित्तमंडल में रख देंगे। ऐसे विचार को धारण करने वाला श्रोता अपने मन को अवधारणा से सज्जित करके आता है।

कोई श्रोता या पाठशाला का विद्यार्थी ऐसा भी होता है जो अनवधान होकर आता है जैसे कि स्मृति भवन में तो आता है किंतु सोचता है यहाँ न्यास भवन में तो व्याख्यान होते ही रहते हैं। रोज–रोज क्या सुनना। वह मन में अवधान के स्थान पर एक गंदी वस्तु, अनुपयोगी वस्तु उपेक्षा को लेकर आता है। उपेक्षा अर्थात् अनदेखा, नजरअंदाज करना।

योगियों के लिए उपेक्षा एक आवश्यक वस्तु है। किंतु ज्ञान विज्ञान के भंडार चित्त में भरने के अभिलाषी विद्यार्थी को उपेक्षा मन में नहीं भरनी चाहिए, अवधान भरना चाहिए।

अवधान को अच्छी भाँति समझाने के लिए आचार्यजी ने गुरु द्रोणाचार्य द्वारा अपने शिष्य कौरव और पांडवों की परीक्षा वृक्ष पर चिड़िया के पुतले को लटका कर नीचे जलपात्र में देखकर बींधने की प्रतियोगिता की घटना सुनाई।

महर्षि दयानंद स्नान भी करते थे, भोजन भी करते थे, समय अनुसार सभी आवश्यक कार्य करते थे। किंतु सारे के सारे आवश्यक कार्यों का मुख्य प्रयोजन अपने लक्ष्य ईश्वर प्राप्ति की ओर मोड़ देते थे। हम भी अपने लक्ष्य की ओर पूरा ध्यान दें। हम भी ऐसा करें तो हमें दो लाभ प्राप्त होंगे। पहला लाभ यह है कि हमने जिस लक्ष्य का निर्धारण किया है उस लक्ष्य की विशेषताओं का पता चल जाएगा। आचार्यजी एक परिवार में गए जिसमें आर्यसमाज नहीं आने वाली एक युवती को देखा। आचार्यजी ने पूछा कि यह आर्यसमाज में क्यों नहीं आती तो जवाब था – गुरुकुल में पढ़ी यह कन्या अभी अपने आईएएस बनने के लक्ष्य प्राप्ति में लगी हुई है। दूसरे वर्ष जब आचार्य जी वहां गए तो पता चला कि वह आईएएस बनाकर उत्तराखंड में नियुक्त हो चुकी है। जब यह आर्यपुत्री डीएम के रूप में हल्द्वानी पहुँची तो अवैध अतिक्रमण करने वाले लोगों के घरों को हटाने के लिए मुख्यमंत्री से आवश्यक इमदाद मांगी और हटा दिया। डीएम बनने के बाद भी सत्य की बढ़ती और असत्य की हानि, न्याय की बढ़ती और अन्याय की हानि जारी रखी।

लक्ष्य की ओर पूरा ध्यान देने से उसके मन में ऐसी शक्ति का जागरण होगा जो उसे अपने लक्ष्य की ओर सफलतापूर्वक ले जाएगी। इसलिए हमारा लक्ष्य पर टकटकी पूर्वक ध्यान होना ही चाहिए।

एक और घटना आचार्यजी ने सुनाई। एक किसान था उसके पास खेत सींचने के लिए पानी थोड़ा था। जितना पानी था उतने में खेत को सींचने का कार्यक्रम बनाया। जलस्रोत से खेत की तरफ पानी चला तो खेत और जलस्रोत के बीच में बड़ा मैदान था। मैदान में वह पानी फैल गया। पानी ने खेत का किनारा तो छू लिया किंतु मैदान में ही फैल गया। दूसरे किसान के पास भी जलस्रोत में पानी थोड़ा था। उसने जलस्रोत से खेत की तरफ अपने जल को नाली के माध्यम से चलाया और सफलतापूर्वक खेती की।

मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम के तरह, योगीराज श्री कृष्ण की तरह, विद्यार्थी महर्षि दयानंद की तरह अपने मन की शक्तियों को मैदान में बिखर कर वित ना होने दे। अवधान की नाली में उनका संचय करके लक्ष्य की तरफ मन की शक्तियों को लगा दो। आप भी महान बन सकते हो। मन की सब शक्तियों को विषयों पर बिखरने मत दो। यदि आप सफल हो गए तो मन और शरीर दोनों बलवान होंगे। जैसे जून के महीने की कड़ी धूप में हम अपने वस्त्रों को सुखाते हैं। सूर्य की किरणें अति तीक्ष्ण होने पर भी कपड़ों को जला नहीं पाती। गर्म अवश्य कर देती है। किन्तु जब आतिशी शीशे के माध्यम से सूर्य की किरणों को केन्द्रित करके कपड़ों पर डालते हैं तो कपड़े कुछ ही देर में जल उठते हैं।

जब विद्यार्थी कोई पाठ भूल जाए और बार–बार प्रयत्न करने पर भी याद नहीं आए तो उसे कैसे स्मरण करे। वेदों में उसे स्मरण करने की तकनीक भी है। महर्षि उसका उपयोग करते थे। आज समय हो गया। फिर कभी उसके बारे में बताएंगे।

आचार्य श्री आर्यनरेशजी ने अचार्य आर्य नरेश जी ने सभी श्रोताओं से एक छोटी सी सूक्ति बुलवाई– **तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु**। और कहा– अपना जीवन के बदले बिना समाज नहीं बदलता। यदि मनुष्य को अपना परिवर्तन करना है तो प्रभु की शरण में रहना है। प्रभु की आज्ञाओं का पालन करना है। कैसी भी कठिनाई हो, जीवन में न्यूनता हो, उठने का अभ्यासी ना हो! किंतु यदि रात्रि के समय में ठीक तरह से यह चिंतन करके सोता है तो निश्चित रूप से प्रातः काल वह समय पर उठता है और उसके जीवन में अद्‌भुत परिवर्तन आता है। मन ही मनुष्य के बंध और मोक्ष का कारण है। इसलिए सर्वप्रथम मन को बदलना पड़ेगा। मन के विचारों को ढ़ करना पड़ेगा।

हमारे समाज का पतन दुर्योधन के समय से आरंभ हुआ था। उस दुर्योधन अभिमानी अधर्मी ने वेदपाठ को छोड़ दिया था, ईश्वर के मार्ग को छोड़ दिया था, ऋषियों के पथ को छोड़ दिया था और अपनी मनमानी पर उतर आया था। समाज वित होता चला गया और उस विकार से मुक्त होकर आज तक भी समाज सुधार नहीं पाया। यह पक्की बात है कि जब तक हम नहीं सुधरते समझ नहीं सुधर सकता। आचार्य जी ने कहा की भवनों का नाम आर्य समाज नहीं है।

आचार्य जी ने स्वयं के जीवन का अनुभव बताया कि वे इतने कृषकाय थे कि कॉलेज में पढ़ते समय दूसरों को स्कूल का विद्यार्थी होने का भ्रम होता था और जब छोटी कार भी पास से निकलती थी तो वे हिल जाते थे। दृढ़ निश्चय के साथ उन्होंने व्यायाम करना आरंभ किया। गाय का दूध नहीं मिलता था तो गाय पर हाथ फिराते थे। इससे भी उन्हें लाभ हुआ और एक वह स्थिति आ गई कि टाटा सूमो में जाते हुए सड़क के किनारे खड़ी छोटी गाड़ी देखकर दो जने मिलकर के अपने अपने हाथों से हिला देते थे, कांच को हथेलियां से पीस देते थे, पीतल की थाली को फाड़ दिया, गाय बांधने की जंजीर को छाती पर बांध के एक झटके में प्राणायाम से तोड़ दिय, चार सूत मोटे सरिये को गले पर रखकर मोड़ दिया।

आर्यसमाज बरनाला में ब्रह्मचारी अचार्य आर्यनरेश को आमंत्रित करके ब्रह्मचर्य की महिमा बताने के लिए इन सारे कारनामों के प्रदर्शन का प्रचार कर दिया जबकि आचार्यजी ने इनका अभ्यास ही नहीं किया था। स्थिति बहुत जटिल हो गई। आचार्यजी ने कुछ समय और यह सारे साधन मांगे और दृढ़ निश्चय करके अपने अब तक किए गए योग और प्राणायाम के अभ्यास को काम में लेते हुए जब अभ्यास किया तो सफल हो गए और तब प्रदर्शन किया। तात्पर्य यह कि दृढ़ निश्चय करने पर कुछ भी असंभव नहीं है। आचार्यजी ने इसाई संतों के नाम से चलने वाली कॉन्वेंट स्कूलों से बचने की सलाह देते हुए कहा कि ये संत नहीं बल्कि वे लोग हैं जिन्होंने लोगों को बलात् इसाई बनाया और नहीं बनने वालों की निर्मम तरीकों से हत्या कर दी और तब भी संत कहलाते हैं।

आचार्यजी ने बताया कि यदि आपको योग में जाना है और आगे बढ़ाना है तो महर्षि दयानंद की ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में उपासना विषय को अच्छी तरह अध्ययन कर लेवें।

भुज की एक घटना सुनाते हुए कहा कि एक गाँव में मुझे बालक के संस्कार के लिए बुलाया गया। आचार्य जी ने कहा गाँव में कोई छुआछूत भेदभाव नहीं होगा। कार्यक्रम का प्रचार करना पड़ेगा और सबको बताना पड़ेगा। यजमान के मुख्य अतिथि डॉक्टर समय पर नहीं आए तो यजमान ने आचार्यजी से कहा कि समय कुछ विलंबित किया जाए। आचार्यजी ने मना कर दिया और यथासमय कार्यक्रम आरंभ कर दिया। जब उनके मुख्य अतिथि डॉक्टर आए तो आश्चर्यचकित हो गए और आचार्यजी से कहा कि आप लोगों को सम्मोहित करते हो। आचार्य जी ने कहा हाँ। जैसा मैं हूं वैसा ही लोगों को बनाने का प्रयास करता हूं । इसलिए सम्मोहित करने में सफल हो जाता हूं।

यदि आपके मन में शक्ति है और आप तैयारी पूरी करते हैं तो असंभव लगने वाली चीज भी, असंभव लगने वाला कार्य भी संभव हो जाता है। शांति पाठ कराके और जयकारे लगवा कर सत्र का समापन किया! सम्मेलन का कुशल संचालन न्यास के उपमंत्री श्री यशपालजी आर्य ने किया।

१४१ वाँ ऋषि स्मृति सम्मेलन

मिति आश्विन् कृ० ११ से १४ संवत् २०८१ विक्रमी

शनिवार २८.०९.२०२४ से मंगलवार ०१.१०.२०२४

तृतीय दिवसः प्रातःकालीन सत्र

मिति आश्विन कृष्णपक्ष १३ संवत् २०८१ विक्रमी सोमवार ३०.०९.२०२३

अथर्ववेद खण्ड पारायण यज्ञ

स्थानः महर्षि दयानंद सरस्वती स्मृति भवन परिसर की पवित्र यज्ञशाला

महर्षि दयानंद सरस्वती स्मृति भवन न्यास, जोधपुर द्वारा आयोजित चार दिवसीय १४१ वें ऋषि स्मृति सम्मेलन के तीसरे दिन मिति आश्विन कृष्णपक्ष १३ संवत् २०८१ विक्रमी सोमवार ३०.०९.२०२४ खीस्ताब्द का आरंभ महर्षि दयानंद सरस्वती स्मृति भवन में ही विराजमान न्यास के आजीवन न्यासी आचार्यश्री वरुणदेवजी के ब्रह्मत्त्व में महर्षि दयानंद सरस्वती स्मृति भवन परिसर में पवित्र यज्ञशाला में सामूहिक ब्रह्मयज्ञ से हुआ।

देवयज्ञ में अथर्ववेद के २८ वें प्रपाठक के तृतीय सूक्त के मंत्रों से आहुतियाँ दिलवाने का आरंभ करवा आज के 'अथर्ववेद खंड पारायण यज्ञ' का आचार्य जी ने आरंभ किया।

प्रथम विराम में आचार्य श्री ने अथर्ववेद काण्ड बारह सूक्त दो के २१वें वेद मंत्र **परं मृत्यो अनु परेहि पन्थां यस्त एष इतरो देवयानात्। चक्षुष्मते शृण्वते ते ब्रवीमीहेमे वीरा बहवो भवन्तु।।** की व्याख्या की। ये मंत्र ऋग्वेद के मृत्युसूक्त में भी है। ये मंत्र जन्म और मृत्यु की चर्चा करते हैं। मृत्यु के समान कोई शिक्षक नहीं है। महाराज युधिष्ठिर से यक्ष ने प्रश्न किया था कि हे युधिष्ठिर! यह बताओ कि संसार में सबसे बड़ा आश्चर्य क्या है? महाराज युधिष्ठिर ने उत्तर दिया था कि कोई दिन ऐसा नहीं जाता जब कोई न कोई श्मशान में नहीं जा रहा हो। यमराज के पास ना जा रहा हो। शव ले जाने वाले यही सोचते हैं कि यह तो जा रहा है, मैं नहीं जाऊंगा। यही सबसे बड़ा आश्चर्य है।

मनुष्य को संसार का बोध अर्थात इंद्रियों संबंधित, इंद्रियजनित ज्ञान होना चाहिए। परंतु हलवा खाते समय कभी यह अनुभव नहीं होता कि यह मधुर रस परमात्मा ने रचा है। किन्तु जब हम गहराई से चिंतन करते हैं कि उसकी कृपा से यह हमें खाने को प्राप्त हो गया– इस आध्यात्मिक ज्ञान का नाम प्रतिबोध है। और जिसे प्रतिबोध हो जाता है उसके लिए मृत्यु भयकारक नहीं है। योगदर्शनकार कहते हैं अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश पाँच दुख की बातें हैं। जिनमें पहली अविद्या और अंतिम है मृत्यु। हम एक दिन नहीं रहेंगे– इसमें डरने की क्या बात है? उसने शरीर को मैं मान लिया। शरीर मरता है। मैं अर्थात् आत्मा नहीं मरता! इस मैं का हमें पता ही नहीं है इसलिए शरीर को ही मैं समझ लिया है। अपने अपने आप को कभी नहीं देखा। दर्पण में प्रतिबिंब ही देखते हैं। हम स्वयं पीठ नहीं देखते! शरीर के अंदर के

अंग तो दर्पण भी नहीं दिखाता! हाँ! चिकित्सक शल्यक्रिया में स्क्रीन पर दिखा सकता है। जब कोई भी बालक दर्पण में देखने वाले प्रतिबंध के बाल सँवारने लगेंगे तो हम कहेंगे यह पागल है। जैसे कोई नासमझ चिड़िया दर्पण में अपने प्रतिबिंब पर चोंच मान रही मार रही है। किंतु हम जो अपने आप को बुद्धिमान समझते हैं वे भी शरीर को ही मैं समझ लेते हैं। इसी कारण उसे दुख होता है! वेद मंत्र मृत्यु को संबोधित करते हुए कहता है कि तू दूसरे मार्ग पर चला जा! मेरे पास मत आ! जो तुम्हारा मार्ग है, वो देवगण के मार्ग से भिन्न है! संसार में दो मार्ग है एक देवियान अर्थात् देवताओं का मार्ग और दूसरा है पितृयान अर्थात् पितरों का मार्ग।

ऋषि स्मृति सम्मेलन श्राद्धपक्ष में चल रहा है। आचार्यजी ने समझाने के लिहाज से बताया कि दिल्ली निवासी एक माताजी मेरे पास आई और बोली श्राद्ध निकालना चाहिए या नहीं। आचार्य जी ने पूछा क्यों निकालना चाहिए? जिसके नाम से निकालते हो क्या वह खाता है?जवाब मिला कि वह तो नहीं खाता उसके नाम से दूसरे को खिलाते हैं। आचार्य जी ने कहा कि यदि मेरे खाने से उनकी तृप्ति हो जाती है तो मैं यहाँ प्रस्तुत हूँ। यदि किसी ब्राह्मण को खिलाने से आपके पितरों का पेट भर जाए तो मार्ग में पाथेय ले जाना ही नहीं चाहिए। उसके नाम से किसी को भी खिला दो, जीवित शरीर को तो पहुंच ही जाना चाहिए। आश्चर्य है कि श्राद्ध में नासमझ परिजन तीन पशुओं के लिए भाग निकलते हैं–एक गाय के लिए, एक कुत्ते के लिए और एक कौवा के लिए भाग निकलते हैं। आचार्य जी ने पूछा आपके पितर क्या बने होंगे? कुत्ता बने या कौवा बने। पितर उनको कहते हैं जो हमें जन्म देते हैं और हमारी रक्षा करते हैं। मृतक रक्षा नहीं करते। जो व्यक्ति सांसारिक कार्यों में लगा है वह पितरों के समान जन्म और मरण के चक्कर में बार–बार आता रहता है। उसी को बार–बार मृत्यु से काम पड़ता है। किंतु देवयान! यह मोक्ष का मार्ग है। जिसने ज्ञान प्राप्त कर लिया, जो विद्वान बन गया, जिसने देव मार्ग को अपना लिया उस पर मृत्यु की कोई आवश्यकता नहीं है। (**चक्षुष्मते शृण्वते**) हे मृत्यो! तेरी आंख है इसलिए आंख खोल कर देख ले, तेरे पास कान है इसलिए कान खोल के सुन ले! मैं देव मार्ग का पथिक हूँ। देवताओं के मार्ग पर जाना है। तुझे मेरे पास आने की आवश्यकता नहीं है। **ते ब्रवीमि** हे मृत्यो! मैं तुझसे ही कह रहा हूं कि जब तक मेरे शरीर में प्राण है! जब तक वे बल पाते हैं! मेरे जो प्राण है यह बहुत सारे हैं! (शरीर में पांच मुख्य और पांच उपप्राण कुल दस प्राण हैं।) मेरे प्राणों का हनन हे मृत्यु!नहीं करना! यह सब मेरे शरीर में बने ही रहने चाहिए ताकि मैं कर्म करने में समर्थ बना रहूं। इसलिए ध्यान से देख ले और सुन ले! हे मृत्यो! तुझ ही से कह रहा हूँ! मेरे पास तू मत आना!

महर्षि दयानंद मृत्यु समय में कहते हैं: 'तेरी इच्छा पूर्ण हो। तेरी इच्छा में ही मेरी भी इच्छा है।' तब मृत्यु दुख का कारण नहीं है। हम लोग देव मार्ग के और ज्ञान मार्ग के पथिक बनें। महर्षि उपदेश मंजरी के सातवें उपदेश में चर्चा करते हुए कहते हैं – जिसकी रुचि हो वह कर्मकांड का अधिकारी हों। यज्ञ में जो वेद मंत्र पढ़े जाते हैं उनके पढ़ने से विचार शक्ति उत्पन्न होती है और सोचते सोचते ज्ञान मार्ग का पथिक बन जाता है। एक व्यक्ति कर्मकांड से समान रूप से सोचता है यह कर्मकांड है। एक व्यक्ति यज्ञ निष्काम भावना से करता है कि यज्ञ

करने से मेरा ज्ञान और विवेक बढ़ेगा और मैं परमात्मा के समीप पहुंचूंगा, परमात्मा की प्राप्ति इससे हो सकेगी। यही लक्ष्य बनाकर यज्ञ करता है वह देवमार्ग का पथिक है।

तेरहवें कांड की आहुतियां पूर्ण होने पर दूसरे विराम में आचार्य जी ने अथर्ववेद के बारहवें काण्ड के पाँचवें सूक्त के तीसरे मन्त्र **स्वधया परिहिता श्रद्धया पर्यूढा दीक्षया गुप्ता यज्ञे प्रतिष्ठिता लोको निधनम्।।** की व्याख्या करते आचार्य जी ने कहा कि यह बहुत सरल सा मंत्र है। यदि हमें शब्दों का प्रयोग आ जाए तो वाक्य में प्रयोग करना आ जाता है। वेद परमेश्वर की वाणी है। यदि उसके माध्यम से बात करनी आ गई तो हम परमात्मा से अपनी बात कहने में और परमात्मा की बात समझने में समर्थ होंगे।

परि का अर्थ है परितः यानि सब ओर से। **हित** शब्द हमने ऋग्वेद के प्रथम मंत्र में **अग्नीमीडे पुरोहितं** में सुना है जिसका तात्पर्य होता है पहले से धारण कर रखा है वह पुरोहित। जो पहले जाकर व्यवस्था को संभालता है वह पुरोहित है। जैसे समान गुण कर्म स्वभाव वाले सहपाठियों में मित्रता हो जाती है वैसे ही परमेश्वर के गुणों को धारण कर लेने से परमात्मा का सामीप्य भी प्राप्त होता है। **परिहिता** सब और से आपकी गतिविधि और उन्नति हो जाएगी। किसके द्वारा हो जाएगी? **श्रद्धया** श्रद्धा के द्वारा हो जाएगी। पौराणिक मान्यता है कि अग्नि नाम का एक शरीरधारी पुरुष देवता है जिसकी दो पत्नियों है–एक का नाम है स्वाहा और दूसरे का नाम है स्वधा। यदि देवताओं को भोजन खिलाना हो तो स्वाहा से आहुति दो और पितरों को खिलाना हो तो स्वधा के लिए आहुति दो। वस्तुत स्वधा का अर्थ है–**स्व** यानि स्वयं का ध अर्थात् धारण। स्वयं के पदार्थ को धारण करने वाले परमेश्वर का नाम है स्वधा अथवा जो व्यक्ति परमात्मा को हमेशा धारण किए रहता है। वह गति व उन्नति को प्राप्त होता है। दूसरे की वस्तु को अपना ना कहें, मात्र अपनी वस्तु को हि अपना कहने वाला स्वधा को धारण करता है और वह सारे संसार के लिए हितकारी हो जाएगा। श्रद्धा में श्रत् का अर्थ त्य को और धा का अर्थ धारण करना अर्थात् सत्य को धारण करना श्रद्धा है। स्वामी जी महाराज ने सत्यार्थप्रकाश के चतुर्थ समुल्लास में परिभाषा देते हुए लिखा है 'जिस क्रिया के द्वारा सत्य को प्राप्त किया जाए उसे क्रिया का नाम है श्रद्धा।''

मनुष्य को सबसे बड़ा आनंद उसी बात में आता है जिसमें उसकी तृप्ति हो। भूखे को कह दे कि आज सो जा! कल खिलाएंगे! तो सोने में आनंद नहीं आता है। जो सज्जनों के लिए हितकर हो उसे ही सत्य कहते हैं। परमेश्वर सज्जनों के लिए हितकर और दुर्जनों के लिए दंडदायक, कष्टदाई है। उसी सत्य अर्थात् परमात्मा को प्राप्त करने की क्रिया का नाम श्रद्धा है। जो श्रद्धा पर सवार है अर्थात् सत्य का व्यवहार, श्रद्धा को कभी नहीं छोड़ते हैं तो आप परमात्मा को प्राप्त कर लेंगे। ज्ञान में व्यक्ति को सबसे अधिक आनंद मिलता है। जो व्यक्ति केवल अपने पदार्थों को अपना कहते हैं, वे सबका हित करते हैं और जो सत्य को प्राप्त करने में लगे हैं वे निश्चित रूप से परमात्मा को प्राप्त करते हैं। महर्षि दयानंद ने यह

मंत्र ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में वेदोक्त धर्म विषय विचार में कहा है।

यज्ञोपरांत कार्यक्रम में सपत्नीक पधारे महर्षि दयानंद सरस्वती स्मृति भवन न्यास के आजीवन न्यासी राजस्थान के पूर्व लोकायुक्त न्यायमूर्ति श्री सज्जन सिंह जी कोठारी का स्वागत किया गया। पूर्णाहुति के पश्चात यजमानों को आशीर्वाद प्रदान किया गया।

सायंकालीन यज्ञसत्र में प्रातःकालीन यज्ञसत्र के अथर्ववेद अथर्ववेद के बारहवें काण्ड के पाँचवें सूक्त के तीसरे मन्त्र की अधूरी रह गई व्याख्या को आगे बढ़ते हुए आचार्यश्री ने दीक्षा शब्द का अर्थ बताते हुए कहा कि स्वामी जी महाराज बताते हैं कि ऋषियों के द्वारा, आप्तों के द्वारा और विद्वानों के द्वारा जो शिक्षा दी गई है उसे शिक्षा का नाम है दीक्षा। दीक्षांत शब्द से हम सभी परिचित है। अध्यापकों द्वारा विषयों को समझने के लिए एक ष्टि दी जाती है, विचार शैली दी जाती है, ताकि हम विषय को अच्छी प्रकार समझ सकें। स्नातक स्तर पर तीन वर्ष और परास्नातक स्तर पर दो वर्ष तक शिक्षा दी जाती है। तत्पश्चात् सीखने की आवश्यकता नहीं होती, अर्थात दीक्षा का अंत हो गया। द का अर्थ है देना। इक्षा अर्थात् देखने की शक्ति देते हैं। ज्ञान नेत्र से देखने की शक्ति देते हैं। **गुप्ता** जो व्यक्ति दीक्षा से युक्त है, ऋषियों के विचार संयुक्त आत्माओं के अनुशासन से जुड़ा हुआ है, विद्वानों की परंपराओं का अनुसरण कर रहा है, वह व्यक्ति वह व्यक्ति संसार में सुरक्षित हो जाता है। ब्राह्मण नाम वाले शर्मा लगाएँ, वर्मा शब्द का विचार करें तो वर्म कवच को कहते हैं क्षत्रिय सुरक्षा के साधन कवच से युक्त होते हैं। वैश्य वर्ण में हो तो नाम के पीछे गुप्त लगावे और शूद्र वर्ण में हो तो नाम के पीछे दास लगावे। धन की क्रमशः प्राप्ति, प्राप्ति की रक्षा, रक्षित की वृद्धि और वृद्धि प्राप्त धन को सत्पात्र को देने के चक्र से धन की रक्षा होती है।

यज्ञे प्रतिष्ठिता अर्थात् यज्ञ में प्रतिष्ठित हो जाए। संसार में करने योग्य यदि कोई काम है तो वह है यज्ञ। यज्ञ केवल अग्निहोत्र मात्र नहीं है। महर्षि बताते हैं कि अग्निहोत्र से लेकर अश्वमेध पर्यंत जितना भी कर्मकांड है–वह सब यज्ञ का विषय है। कुछ और शब्द जोड़े हैं। शिल्प विद्या! शिल्प का अर्थ है जोड़ना और तोड़ना। जोड़ तोड़ करना! इसी का नाम यज्ञ भी है। प्रतिष्ठित का अर्थ है अब कोई क्रिया नहीं करनी। गतियाँ निवृत हो गईं, समाप्त हो गईं! हम स्थिर हो गए! गतियाँ दो प्रकार की है बाह्य और आंतरिक। दोनों प्रकार की गतियां की निवृत्ति हो जाए तब हम प्रतिष्ठित समझ जाएंगे, तब हमारी प्रतिष्ठा होती है।

आचार्यजी ने आगे बताया कि महर्षि लिखते हैं कि इस संसार में कोई भी मनुष्य तीन चीजों से रहित नहीं हो सकता ज्ञान कर्म और उपासना से।

ब्रह्मा से लेकर के जैमिनि पर्यंत सब मिलकर ज्ञान कांड होता है।

अग्निहोत्र से लेकर अश्वमेध पर्यंत कर्मकांड है।

तृण से लेकर परमेश्वर पर्यंत पदार्थ का लाभ उपासना है।

लोको निधनम् यह संसार निधन है। यहाँ नि का अर्थ है निश्चित। धन अर्थात

द्रव्य। जो निश्चित रूप से आपका है उसे निधन कहते हैं। जब तक संसार में रहें तब तक संसार का उपकार करना चाहिए। अपने अधिकार की वस्तुओं को जान लीजिए। उसे संसार के हित के लिए प्रयुक्त करें। विचारें कि श्रद्धा कैसे प्राप्त करूंगा? फिर यज्ञ कैसे करूंगा? फिर सारे संसार को कैसे प्राप्त करूंगा और कैसे उससे और उसका उपकार करूंगा? जन्म से ही अपना दीक्षा और मृत्यु तक संसार का उपकार करना–यह वेद विहित धर्म है। यह मंत्र यही सिखाता है।

चौदहवें कांड की समाप्ति पर दूसरे विराम में आचार्य जी ने कहा कि इस कांड में दो ही सूक्त है और दोनों ही सूक्त विवाह संस्कार से संबंधित हैं। संस्कार विधि में विवाह संस्कार की व्याख्या भाग में महर्षि इन्हें लिखते हैं। परमेश्वर यह आशीर्वाद देता है कि **इहैव स्तं मावि यौष्टं विश्वमायुर्व्यश्नुतम्। क्रीडन्तौपुत्रैर्नप्तृभिर्मोदमानौ स्वस्तकौ।।** अथर्ववेद काण्ड १४ सूक्त १ मन्त्र २२।। इस मंत्र की व्याख्या करते आचार्यश्री बताते हैं कि तुम दोनों (वर–वधु) यहीं इसी गृहस्थ में रहो। तुम्हारा कहीं भी वियोग ना हो! एक दूसरे से अलग ना रहना पड़े! सदा साथ में रहो! वेद के नियम के अनुसार अथवा विद्वानों के अनुशासन में चलने से प्राप्त होने वाली सौ वर्ष की आयु को प्राप्त करो! गृहस्थ में क्रिया करते हुए पुत्र–पुत्रियों और पौत्रों दौहित्रों के साथ क्रीड़ा करते हुए, खेलते हुए रहो! आनंद मंगल मनाते हुए अपने–अपने घरों में स्वस्थ रहो!

अंतिम दिन मिति आश्विन कृष्णपक्ष १४ संवत् २०८१ विक्रमी मंगलवार ३१.०९.२०२३ को प्रथम विराम पर आचार्य श्री ने अथर्ववेद के तेरहवें काण्ड के प्रथम सूक्त के साठवें मन्त्र **यो यज्ञस्य प्रसाधनस्तन्तुर्देवेष्वाततः। तमाहुतमशीमहि।।** की व्याख्या करते हुए बताया कि जो यज्ञ का प्रष्ट साधन है अर्थात् जिसके करने के बाद मनुष्य यज्ञ करने का अधिकारी बनता है–ऐसा धागा है, अर्थात यज्ञोपवीत। यह विद्वानों में विस्तृत होता है। उसे, पूजनीय को, जिसके लिए यह आहुतियाँ दी जा रही है हम उसे प्राप्त कर लें तो हमारे साथ सदा उपस्थित रहता है।

सन्यासी को शिखा सूत्र से मुक्ति मिलती है। क्योंकि उसे बाह्य चिह्नों की आवश्यकता नहीं। वह तो ईश्वर के ध्यान में मग्न होता है और जहाँ कहीं कमी दिखाई देती है तो उसे टोकना ही उसका काम है। उसके वस्त्र ही अग्निमय हो गए। अब वह विरक्त हो चुका है इसलिए सन्यासी के पास शिखा सूत्र का बंधन नहीं है।

यज्ञोपवीत हेतु महर्षि ने तीन नियम बताए– पहला सदा सत्य बोलना! दूसरा ऊबड़ खाबड़ स्थान पर नहीं बैठना! तीसरा रजस्वला स्त्री से संपर्क नहीं करना! इन नियमों का निहितार्थ यह है कि सत्य और ब्रह्मचर्य के बिना कोई व्यक्ति यज्ञ अर्थात् श्रेष्ठ कर्मों को करने की योग्यता अर्जित नहीं कर सकता।

मंत्र की आगे व्याख्या करते आचार्यजी ने बताया कि देवों में अर्थात विद्वानों में यह (यज्ञोपववीत) उनका बाह्य प्रतीक चिन्ह है। महर्षि दयानंद ने सत्यार्थप्रकाश और उपदेश

मंजरी में चर्चा करते हुए लिखते हैं कि यह आभूषण है। मनुस्मृति में इसकी चर्चा है कि दाहिने हाथ को उठा लीजिए तब यज्ञोपवीत पहने। यग्योपविती–यज्ञोपवीत जब दाहिने हाथ के नीचे है तो यज्ञ के अधिकारी हैं। दूसरी प्राचीनवीति–यदि बाएँ हाथ के नीचे पहन लिया तो आप पितृकर्म करने के अधिकारी हो गए, अर्थात् माता–पिता की सेवा भोजन आदि करते समय बाएँ हाथ के नीचे यज्ञोपवीत डाल देना चाहिए। उस समय सबको पता चल जाएगा कि यह माता–पिता की सेवा में लगा है। बाए कंधे पर दाहिने हाथ के नीचे होगा तो देव यज्ञ करने का समय है। तीसरी निविति अर्थात् गले में माला के समान धारण करना।

आचार्यजी ने कहा कि संभवत मुगलों के आने के बाद लोगों ने यह यज्ञोपवीत वस्त्रों के नीचे पहनना आरंभ किया। उससे पूर्व यज्ञोपवीत वेस्टन के बाहर ही पहनी जाती थी। आचार्य भी यज्ञशाला में आने वाले विद्यार्थी को पहले वस्त्र देकर उसके बाद यज्ञोपवीत प्रदान करते थे। स्वामी जी महाराज ने यज्ञोपवीत के लिए एक पूरे संस्कार की व्यवस्था की है। उपनयन संस्कार–उपनयन का अर्थ दो प्रकार से करते हैं नयन का अर्थ होता है प्राप्त करना। उप यानि समीप। अर्थात् आचार्य के समीप विद्यार्थी को प्राप्त करना। तब वह विद्या और ज्ञान को प्राप्त करेगा। और वास्तव में यह मनुष्य बन जाएगा। जब तक मनुष्य को ज्ञान नहीं है वह दो पैरों पर चलने वाला पशु ही है।

दूसरे विराम में आचार्यजी ने अथर्ववेद के पंद्रहवें काण्ड के ग्यारहवें सूक्त के प्रथम मन्त्र **तद्यस्यैवंविद्वान्व्रात्योऽतिथिर्गृहानागच्छेत्**। और ग्यारवें सूक्त के दूसरे मन्त्र **स्वयमेनमभ्युदेत्य ब्रुयाद्व्रात्य क्वावात्सीर्व्रात्योदकं व्रात्यतर्पयन्तु व्रात्य यथा ते प्रियं तथास्तु व्रात्य यथा तेवशस्तथास्तु व्रात्य यथा ते निकामस्तथास्त्विति।।** की व्याख्या करते बताया कि जो व्यक्ति यम और नियमों का पालन करता है उसका नाम है व्रती। वृत्ति के हितकारी को व्रात्य कहते हैं। परमेश्वर सबसे बड़ा व्रात्य है क्योंकि जो भी संकल्प हम करते हैं वह परमात्मा की कृपा से ही पूर्ण होता है। अतिथि यज्ञ की व्याख्या में ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका और पंचमहायज्ञविधि में महर्षि दयानंद ने इनका प्रयोग किया है। आचार्यजी ने कहा– वह जिसके घर पर इस प्रकार का विद्वान व्रात्य है। व्रात्य ऐसे अतिथि को कहते हैं जो व्रत वाला है। यदि ऐसा व्यक्ति आ जाए तो स्वयं उठकर के उसके पास उठकर जाएँ और बोलें कि कल रात्रि में आप कहाँ ठहरे थे? हे व्रात्य! आप यह जल लीजिए और आप अपने सत्य उपदेशों के द्वारा हमारे संपूर्ण परिवार जनों को तृप्त कीजिए! हे व्रात्य! जो कुछ भी आपको प्रिय है हम वैसे ही व्यवस्था करते हैं! जो कुछ भी आप अपने वश में करना चाहते हैं हम आपको वैसे ही वाशी बना लेंगे! जो कुछ भी आपकी निश्चित कामनाएँ हैं वे सब पूरा करने के लिए हम तत्पर होते हैं।

अगले विराम में अथर्ववेद के बारहवें काण्ड के दूसरे सूक्त के अड़तालीसवें मन्त्र **अनड्वाहं प्लवमन्वारभध्वं स वो निर्वक्षद्दुरितादवद्यात्। आ रोहत सवितुर्नावमेतां**

षड्भिरुर्वीभिरमतिं तरेम।। की व्याख्या करते बताया कि संस्त में **अनड्** शब्द का अर्थ है छकड़ा गाड़ी। उसे खींचने वाले को **अनड्वाह** बैल कहते हैं। लेकिन वेद में **अनाड्वाह** संपूर्ण ब्रह्मांड को चलाने वाले परमात्मा का नाम है क्योंकि वह समस्त प्राणधारियों को चलाना है। प्लव नाव को कहते हैं। इस नाव पर चढ़ जाओ। परमेश्वर रूपी मजबूत इंजन वाली नौका के साथ रहो। इसको मत छोड़ो! वह परमेश्वर तुम्हें संसार सागर से बाहर निकाल कर ले आएगा! वह दुरितों से दुर्गुण, दुर्व्यसन और दुखों से बाहर निकाल देगा! निंदनीय कर्मों से बाहर निकाल लेगा! आइये! इसकी सवारी करें। यह उत्पादक प्रेरक और आनंद दाता सविता की नाव है जिसकी हम सवारी करें! इस नाव पर चढ़ने के लिए छः विस्तृत साधन है उनका नाम है षट्कसंपत्ति – शम, दम, उपरति, तितिक्षा, श्रद्धा और समाधान! जो व्यक्ति इन छः बातों से युक्त होकर इस नाव पर चढ़ जाता है तो मोक्ष का अधिकारी बन जाता है, अज्ञान रोग और दुखों के सागर को तैर कर पार हो जाते हैं!
इसके पश्चात आचार्य जी ने पूर्व के यज्ञसत्रों में जो व्याख्या की उनका उपसंहार बताया।

यज्ञोपरांत आर्य किशन लाल जी गहलोत ने सम्मेलन में आए सभी वृद्ध आर्यजनों से निवेदन किया कि अगले ऋषि स्मृति सम्मेलन में आप अपने पुत्र–पुत्रवधुओं को भेजें। तत्पश्चात् सम्मेलन में आगंतुकों के पंजीकरण में सेवा देने वाले श्री ब्रजमोहन जी त्रिपाठी, श्री नरसिंह जी गहलोत और पंजीकरण में सेवा के साथ ही यज्ञशाला में नित्य उपस्थिति और सेवा देने वाले श्री मंजीतजी का सम्मान किया गया। यज्ञशाला में नित्य उपस्थिति और सेवा देने वाले श्री दिलीपजी और दैनिक अग्निहोत्री मनीषा जी का भी सम्मान किया गया। लौहकार श्री कन्हैयालाल जी, समर्पित प्रचारक और कार्यकर्ता श्री छतरसिंहजी, प्रेम भाई शास्त्री और उनके धर्मपत्नी का भी सम्मान किया गया। सेवा के लिए माता चंपाबाईजी का भी सम्मान किया गया। स्वास्थ्य सेवाओं के लिए व न्यास के मैदानों की व्यवस्था के लिए श्री मुकेशजी शर्मा को और साथ में धर्मपत्नी साधनाजी का भी सम्मान किया गया। श्री विनोद जी आचार्य वुशु प्रशिक्षक, आचार्यकुलम् के नाम से अकादमी चलाते हैं और विद्यार्थियों को यहां नियमित रूप से यज्ञ करने और सत्संग करने के लिए स्वाध्याय करने के लिए लेकर आते हैं उनमें संस्कार भरने के उत्साही है उनका भी सम्मान किया गया।

मिति आश्विन कृष्णपक्ष १३ संवत् २०८१ विक्रमी सोमवार ३०.०९.२०२३

रात्रि सत्रः भजन-प्रवचन

स्थानः महर्षि दयानंद सरस्वती स्मृति भवन परिसर की पवित्र यज्ञशाला

सायंकालीन यज्ञोपरांत और पंडाल में कार्यक्रम आरंभ होने से कुछ समय पूर्व ही तेज हवाओं के साथ आई वर्षा से कार्यक्रम बाधित हुआ। पांडाल में संसाधनों को सुरक्षित करने के बाद यज्ञशाला में व्यवस्था करने में कुछ समय लगा। तत्पश्चात् यज्ञशाला में हुए

कार्यक्रम के आरंभ में भजनोपदेशक श्रीमान राजेश जी अमर प्रेमी ने गायत्री मंत्र और अर्थ के मधुर कर्णप्रिय गान के पश्चात मौसम के अनुकूल **'वर्षा दाता सुख बरसा, आंगन आंगन सुख बरसाऽ ऽऽ...'** गाया तत्पश्चात 'कौन कहे तेरी महिमा, कौन कहे तेरी माया। **किसीने है हे परमेश्वर! तेरा अंत कभी ना पाया।।'** गाकर परमात्मा के प्रति श्रद्धा भरी। परमात्मा के विचित्र कार्यों की महिमा के से परिपूर्ण भजन **'कैसी प्रभु तूने कायनात बांधी, एक दिन के पीछे एक रात बांधीऽऽ..'** गाया और तब महर्षि दयानंद का महिमा गान करते हुए **'आया रे एक योगी, ऐसा उसने किया उपकार, समय के बदल गई रफ्तारऽऽ..'** गाकर श्रोताओं को झूमने को बाध्य कर दिया।

आचार्य विष्णुमित्रजी वेदार्थी: – तत्पश्चात् श्रोताओं को संबोधित करते हुए आचार्य विष्णुमित्रजी वेदार्थी ने गायत्री मंत्र के सामूहिक उच्चारण के पश्चात कहा कि हर मनुष्य स्वर्ग की इच्छा करता है। जहां सुख और सुख की सामग्री अधिक हो और दुख तथा दुख की सामग्री कम हो उसे स्वर्ग कहते हैं। जहां दुख और दुख की सामग्री अधिक और सुख तथा सुख की सामग्री कम हो उसे नर्क कहते हैं। यह स्वर्ग और नरक दोनों अवस्थाएं यहां भी है –इस लोक में भी है और वहां अर्थात् परलोक में भी है। स्वर्ग हमें कर्मों के अनुसार ही मिल सकता है। अतः कर्मों का सुधार कर लेवें।

प्रत्येक ऋषि एक बात कहते हैं कि जो गृहस्थ प्रतिदिन पंचमहायज्ञ करता है उसका स्वर्ग का निवास बना रहता है और यदि परिवार स्वर्ग नहीं है तो पंचमहायज्ञ करने से स्वर्ग बन जाता है। केवल वर्तमान जीवन ही स्वर्ग नहीं बनता, किंतु मृत्यु के पश्चात बना बनाया स्वर्ग मिलता है। पंचमहायज्ञ के नाम ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, पितृयज्ञ, बालिवैश्वदेवयज्ञ और अतिथि यज्ञ हैं। तात्पर्य यह कि संसार में यज्ञ ही यज्ञ करना है और कुछ नहीं करना।

पहले यज्ञ शब्द के अर्थ को जानें। महात्मा जनक अपनी सभा के अलंकार महर्षि याज्ञवल्क्य से पूछते हैं कि यज्ञ किसे कहते हैं? तब उन्होंने कहा कि जो जो श्रेष्ठतम कर्म है उन सब का नाम यज्ञ है। समझाते हुए आचार्यजी कहते हैं– आप यदि एक नदी के किनारे संध्या कर रहे हैं। तभी नदी से एक चीत्कार त्राहिमाम् त्राहिमाम् की आती है तो संध्या जारी रखनी चाहिए या डूबते को बचाना चाहिए। ऐसे आपत्काल में उस डूबते को बचाने का नाम यज्ञ है। खेती करना श्रेष्ठ कार्य है उसका नाम यज्ञ है। भोजन बनाना अच्छा काम है अतः उसका नाम भी यज्ञ है। बस बुरे कर्मों को छोड़ देना है। जो कार्य यज्ञ नहीं है, श्रेष्ठ नहीं है, वह नहीं करना है। परमात्मा का भी एक नाम यज्ञ है। परमात्मा के द्वारा किए गए सभी कर्मों का नाम भी यज्ञ है। इसके पश्चात आचार्य जी ने यज्ञ शब्द की व्याख्या की।

ब्रह्मयज्ञ का संबंध ब्रह्म अर्थात् परमात्मा से है। उससे, सबसे बड़े से अपना संबंध जोड़ने का नाम ब्रह्मयज्ञ है। मन को केंद्रित करके उसे परमेश्वर के निजनाम ओ३म् का अर्थ सहित जाप करो। संध्या के मंत्रों का भी अर्थ पूर्वक पाठ करते हुए विचार करो।

दूसरा ब्रह्म यज्ञ स्वाध्याय है। जिन पुस्तकों को पढ़ने से हमारे मन के चिंतन का

प्रवाह बाहर की ओर हो और फल भी बाहर हो– उसका नाम है अध्याय अर्थात अध्ययन। जिन पुस्तकों के अध्ययन से, जिस श्रवण और मनन से हमारे मन का प्रवाह अपने भीतर की ओर हो, आत्मा की ओर हो, परमात्मा की ओर हो उसका नाम है स्वाध्याय। मानसिक उन्नति के लिए आत्मिक उन्नति के लिए और परमात्मा की प्राप्ति के लिए जो अध्ययन किया जाता है वह है स्वाध्याय!

याज्ञवल्क्य के समक्ष एक जिज्ञासु ने प्रश्न रखा यदि कल सूर्य ना निकले तो क्या हो जाए? याज्ञवल्क्य ने कहा विनाश हो जाएगा! फिर पूछा कल चंद्रमा ना निकले तो क्या हो जाए?याज्ञवल्क्य ने कहा विनाश हो जाएगा! यदि पानी बहन बंद हो जाए तो क्या हो जाए? याज्ञवल्क्य ने कहा कि विनाश हो जाए। तभी याज्ञवल्क्य ने कहा यदि कल सूर्य ना निकले तो वह हो जाए! कल चंद्रमा ना निकले तो वह हो जाए! यदि पानी बहन बंद हो जाए तो वह हो जाए जो स्वाध्याय ना करने से हो जाए! इन तीनों के न होने से वह हो जाए जो स्वाध्याय ना करने से हो जाए। यह दृष्टान्त स्वाध्याय की महिमा बताता है।

स्वामी चेतनानंद जी महाराजः – स्वामी चेतनानंद जी महाराज ने कहा कि अरस्तू ने एक बात कही। यदि मनुष्य समाज की मर्यादाओं के अनुसार रहता है तो देवता है और मर्यादाओं को तोड़ता है तो पशुओं का बड़ा भाई है। सृष्टि में मानवेतर प्राणियों के संगठन में, व्यवहार में कोई परिवर्तन नहीं हुआ क्योंकि उनका सारा व्यवहार परमात्मा के द्वारा दिए गए स्वाभाविक ज्ञान से नियंत्रित होता है। हाँ! मनुष्य नामक प्राणी, मनुष्य एक ऐसा प्राणी है जो परमात्मा प्रदत्त ज्ञान वेद के अनुसार रहता है तो वह देवता है और जो इन नियमों को तोड़ता है, वेदविरुद्ध चलता है तो उसेसे समाज में हाहाकार मच जाता है। महर्षि ने कहा है कि महाभारत के लगभग एक व 9000 वर्ष पूर्व वैदिक मर्यादा का क्षय होना आरंभ हुआ, जिसका परिणाम महाभारत के रूप में हुआ। स्वामीजी ने कहा कि भीष्म पितामह का ब्रह्मचर्य का निर्णय उचित नहीं था। जिस पिता को वानप्रस्थ में जाना था, वह नवगृहस्थ में प्रवेश करता है और इसके लिए जो विवाह के योग्य था, जो राजा बनने योग्य था, वह आजीवन ब्रह्मचारी बना और राजसिंहासन पर बैठे निर्योग्य लोगों की सेवा के व्रत में बंध गया। इसका कारण वस्तुतः यह था कि महाभारत तक किसी ने भी ऐसी गलत व्यवस्था के विरुद्ध आवाज नहीं उठाई।

स्वामीजी महाराज ने कहा कि महर्षि दयानंद ने जो भी बात कही है वह अपने जीवन में शोध करके पूर्ण विचार करके कही है। जहाँ धर्म का नाश और अधर्म का बोलबाला हो जाता है वहां कोई भी जीव सुखी नहीं होता। उदात्त परंपराएं समाप्त होकर बाल विवाह, सती प्रथा जैसी कुरीतियां और कुप्रथाएं आती हैं। महर्षि दयानंद ने इन कुप्रथाओं को अंधपरंपराओं को मिटाने का पूरा–पूरा प्रयास किया। उनकी हानियां बताई, बाल विवाह, जन्मना जातिवाद के विरुद्ध भी आर्यसमाज ने कार्य किया।

आज समाज में नशे की प्रवृत्ति सबसे बड़ी हानिकारक है जिसमें सरकार आंख बंद

करके कार्य कर रही है। हालत यह है कि यदि कोई प्यासा हो तो उसे पानी की प्याऊ नहीं मिलेगी, शराब की दुकान बहुत मिल जाएंगी। इसका सबसे बड़ा प्रभाव माताओं, बहनों, बेटियों पर होता है। राम के नाम पर सरकारें बनाने वालों से भी स्वामी जी ने पूछा कि आप राम राज्य लेकर के आओगे तब लाओगे। लेकिन उसके लिए दारू के ठेके कब बंद करोगे? नाम श्रद्धा से राम का लेते हैं, किंतु काम रावण का कर रहे हैं।

हम कहते हैं दुनिया सो रही है। किंतु सच्चाई यह है की दुनिया को जगाने वाले आर्यसमाजी सो रहे हैं। विधर्मियों की सक्रियता, षड्यंत्र और कुचक्रों के कारण भारत की लगातार बढ़ रही दुर्दशा का चित्र श्रोताओं के सामने विस्तार से खींचते हुए अपनी जाति भाटी बताने वाले और श्रीमाली बताने वाले दो लोगों को सभा में खड़ा करके स्वामी जी ने कहा कि उनकी नाक, आँख कान सहित शरीर की पूरी रचना समान है। कान नाक आंख का स्थान वही है। उंगलियां एक जैसी बनी हुई है। सब कुछ दोनों में यथास्थान है–तब भिन्न जाति के कैसे हुए? विदेशियों की शारीरिक रचना का भी सामान्य वर्णन करते हुए स्वामी जी ने कहा कि छोड़ो जन्मना जातिवाद! संकीर्णता! नस्लवाद! संपूर्ण मनुष्यों को एक जाति समझो! वरना वसुधैव कुटुंबकम कैसे करोगे?

स्वामीजी महाराज की आज की वक्तृता ने श्रोताओं को झकझोर दिया।

आचार्य आर्यनरेशजी: – आचार्य आर्यनरेशजी ने विश्वानिदेव मंत्र का सामूहिक उच्चारण कराकर कहा कि हम कम हैं उसका गम नहीं है। हम कटे हुए हैं यह गम की बात है। वेद हमारे जीवन की शान है! मानवता की पहचान है! तत्पश्चात विश्वानिदेव मंत्र की बहुत सुंदर व्याख्या आचार्य जी ने की। आचार्य जी ने आज के युग में बेटियों की उन्नति का चित्रण उदाहरण सहित सब के सम्मुख प्रस्तुत किया और बेटियों के साथ भेदभाव दूर करने का आवाहन किया! उन्हें आगे बढ़ाने का आवाहन किया! आचार्य जी ने विधर्मी कुचक्रों से सावधान करते हुए कहा कि देश के नौ राज्यों में हिंदू अल्पसंख्यक हो गए हैं, ३00 तहसीलों में अल्पसंख्यक हो चुके हैं। किंतु हिंदू सो रहा है। उसे ना अपनी रक्षा करनी है ना अपनी बहन बेटियों की रक्षा करनी है। उन्हें ना बच्चों को बचाना है ना समाज को बचाना है और ना ही देश को बचाना है। नेताओं को देश से स्नेह नहीं है, जनता से नहीं है, संस्कृति से स्नेह नहीं है! इन्हें मात्र वोटो से स्नेह है!

आचार्यजी ने श्रोताओं के समक्ष विधर्मी और विदेशी कुचक्रों का विस्तार से चित्र खींचा। हमारी अपनी कमजोरियों को भी खुलकर बताया। कहा– अपने बच्चों में वीर रस भरो। स्वयं जागो! परिवार, समाज और देशभर को जगाओ!

शान्तिपाठ और जयकारों से सत्र का समापन हुआ।

२५ से २७ अक्टूबर तक आर्यसमाज मगरापुंजला के वार्षिक उत्सव तथा शारदीय नवसस्येष्टि को म.द.स.स्मृति भवन न्यास में यज्ञोपरान्त भजन प्रतियोगिता के प्रतियोगी।

Postal Reg. Jodhpur/434/2024-2026

Date of Posting 9,10-11-2024
Date of Print 8-11-2024

जोधपुर की ११० वर्ष पुरानी गौ शाला में दान व समय देकर पुण्य कमाएँ। दान आय कर की धारा ८० जी में छूट प्राप्त है।

तुम्हारा तन, मन, धन, गाय आदि की रक्षारूप परोपकार में नलगे तो किस काम का है? देखो! परमात्मा का स्वभाव है कि जिसने सब विश्व और सब पदार्थ परोपकार ही के लिये रच रखे हैं, वैसे तुम भी अपना तन, मन, धन परोपकार ही के अर्पण करो। : - महर्षि दयानन्द सरस्वती "गोकरुणानिधि में"। यूकोबैंक खातासं 05630110041192मंडोरशाखा

सत्वाधिकारी महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मृति भवन न्यास जोधपुर 0291-2516655 के लिए प्रकाशक व मुद्रक विजयसिंह भाटी द्वारा महर्षि दयानन्द मार्ग, मोहनपुरा पुलिया के पास जोधपुर (राज.) से प्रकाशित एवं सैनिक प्रिण्टर्स, मकराणा मौहल्ला केरू की पोल जोधपुर फोन नं. 9829392411 से मुद्रित,

सम्पादक फोन नं. 9460649055

Book-Post

श्री प्रधान ...